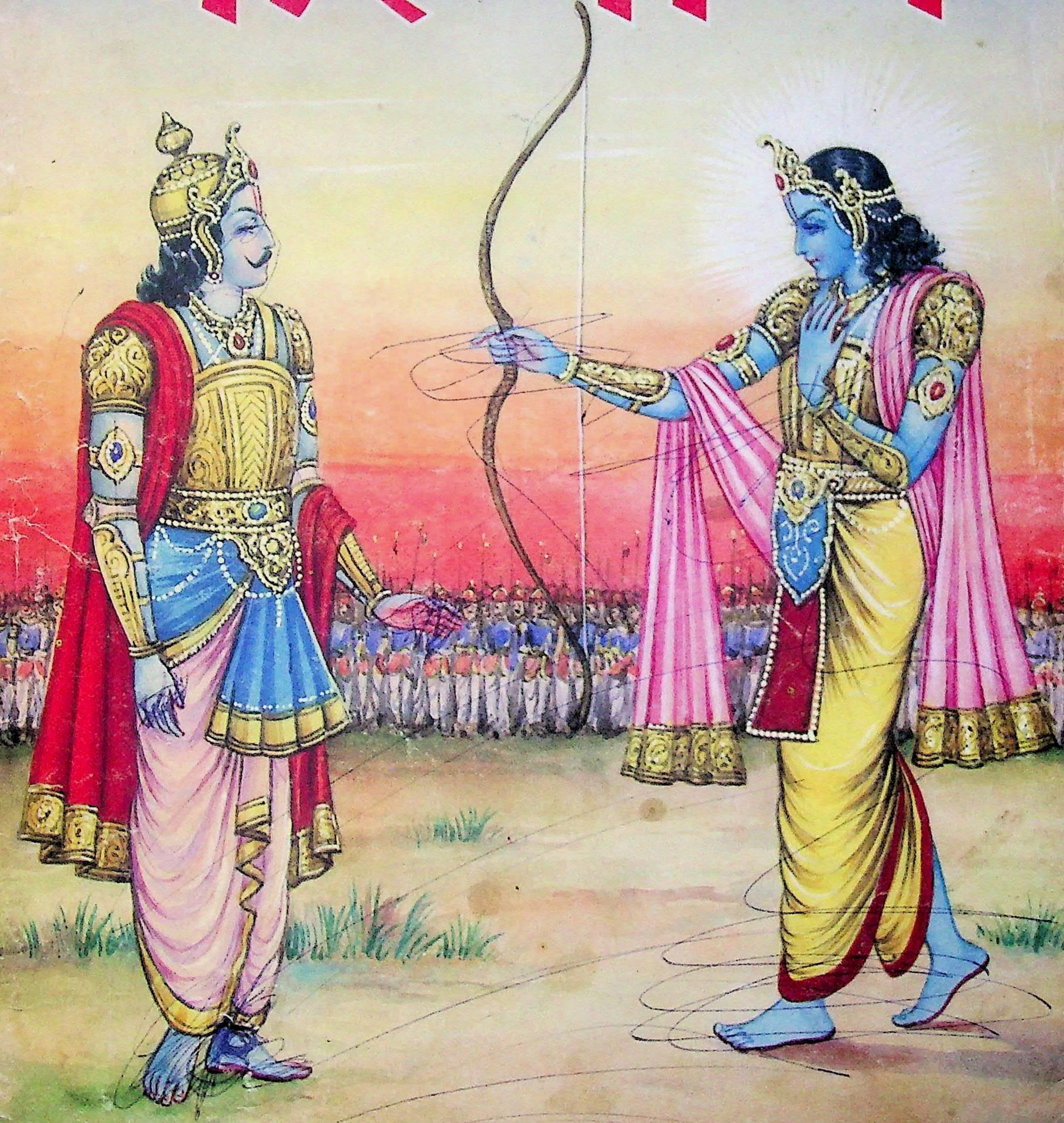
ॐ श्रीपरमात्मने नमः

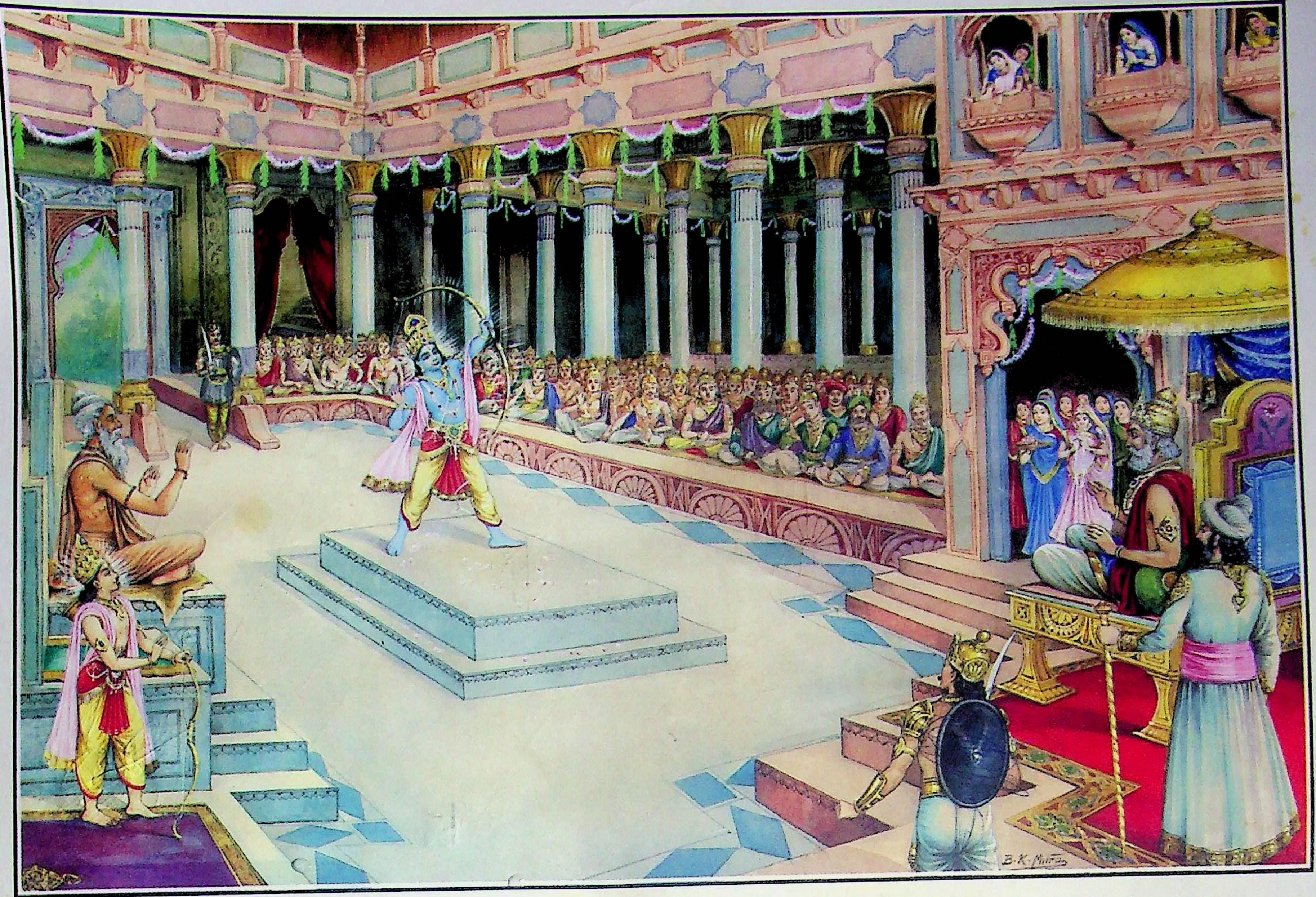
कल्याण



वर्ष ८०

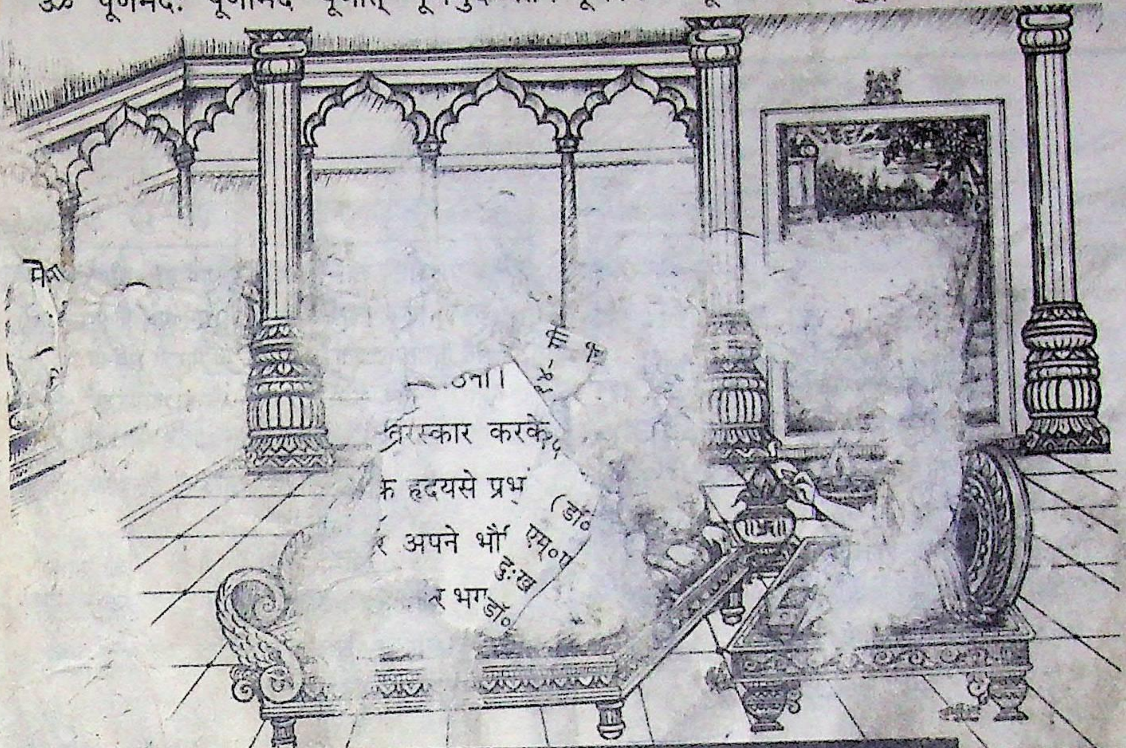
गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या ११



धनुष-यज्ञ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादा... ...र्णमेवावशिष्यते॥





यथा... ...ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम्।
आत्मा... कर्मानु... ...य मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम्॥

वर्ष ८०

...र्गशीर्ष ...६३, श्रीकृष्ण-सं० ५२३२, नवम्बर २००६ ई०

संख्या ११

पूर्ण संख्या ९६०

धनुष-यज्ञ

चाप समीप रामु जब आए। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए॥
सब कर संसउ अरु अग्यानू। मंद महीपन्ह कर अभिमानू॥
भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई॥
सिय कर सोचु जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख दावा॥
संभुचाप बड़ बोहितु पाई। चढ़े जाइ सब संगु बनाई॥
राम बाहुबल सिंधु अपारू। चहत पारु नहिं कोउ कड़हारू॥
राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि॥

× × × ×

गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा। अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ॥
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें। काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़ें॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥
[श्रीरामचरितमानस]



हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,३०,०००)

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०६३, श्रीकृष्ण-सं० ५२३२, नवम्बर २००६ ई०

विषय-सूची

~~○~~

चित्र-सूची

~~○~~

वार्षिक शुल्क
भारतमें १३० रु०
सजिल्द १५० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$25 (Air Mail)
US$13 (Sea Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पञ्चवर्षीय शुल्क
भारतमें ६५० रु०
सजिल्द ७५० रु०

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : booksales@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

कल्याण

तुम विद्या-बुद्धिमें, शक्ति-सामर्थ्यमें, बल-पौरुषमें, पद-प्रतिष्ठामें, धन-ऐश्वर्यमें, कला-कौशलमें, सौन्दर्य-माधुर्यमें, संयम-साधनमें, त्याग-वैराग्यमें और ज्ञान-विज्ञानमें कितने ही बड़े क्यों न हो जाओ, भूलकर भी कभी भगवान्के आसनको मत चाह बैठना।

परमात्माकी अचिन्त्य शक्तिका तिरस्कार करके जो मनुष्य मोह या अभिमानवश लोगोंके हृदयसे प्रभुके दिव्य और नित्य नाम-रूपको हटाकर अपने भौतिक और अनित्य नाम-रूपको बैठाना चाहता है और भगवान्के बदले उनसे अपने हाड़-मांसके अपावन पुतलेकी पूजा-अर्चा करवाता है, उसका पतन होते देर नहीं लगती!

तुम्हारे अंदर जो कुछ भी शक्ति है, जो कुछ भी सत्ता-महत्ता है, सब भगवान्से आयी है, भगवान्की दी हुई है। उनकी दी हुई शक्ति-सत्ता-महत्ताको विनयपूर्वक हमेशा ईमानदारीके साथ उन्हींकी सेवामें समर्पण करते रहो। ऐसा करनेसे ये और भी बढ़ेंगी और भी पवित्र होंगी। भगवान्की महत्त्वपूर्ण शक्तियोंका स्रोत तुम्हारी ओर बह चलेगा और तुम्हें अपने अंदर लेकर महान् शक्तिशाली बना देगा।

सदा विनम्र रहो। सारे सद्गुणों और अखिल ऐश्वर्योंके भण्डार परमात्म-प्रभुके चरणोंमें अपनेको अर्पण करते रहो। तुम्हारे पास कोई भी आये, उसे सीधा प्रभुका नाम बतला दो। तुम्हारी पूजाके लिये कैसा भी बहुमूल्य पदार्थ तुम्हारे सामने आये, उसे सीधे भगवान्के अर्पण करवा दो। ललचा मत जाओ—किसी भी लोभनीय वस्तुको देखकर! ललचाये कि गिरे! तुम तो अपने लिये सबसे अधिक, नहीं नहीं, एकमात्र लोभनीय मानो श्रीभगवान्को ही। और अपने आचरणोंसे, सद्व्यवहारसे भगवान्की दी हुई शक्तिके सदुपयोगसे ऐसा प्रयत्न करो कि जिसमें जगत्के नर-नारी श्रीभगवान्की ओर झुकें, उनकी भक्ति करें और उनके प्रेमको पाकर कृतार्थ हो जायँ।

जहाँतक हो, गुरु बननेकी चेष्टा मत करो, शिष्य ही रहो। इसीमें तुम्हारी भलाई है। कहीं परमात्माकी प्रेरणासे गुरु बनना पड़े तो सावधान हो जाओ। तुम्हारी जिम्मेवारी और भी गुरुतर हो जाती है। गुरुपनका घमण्ड न करो। सदा-सर्वदा सचेत रहकर निष्कपटभावसे बाहर और भीतरसे अपनी प्रत्येक चेष्टाको शुद्ध, सात्त्विक और भगवत्सेवामयी बना लो। तुम्हारी एक भी चेष्टा—एक भी क्रिया ऐसी नहीं होनी चाहिये, जिससे सर्वाराध्य प्रभुके प्रति किसीके भी मनमें तनिक-सी भी अमङ्गलमयी अश्रद्धा उत्पन्न हो। भगवान्से सदा प्रार्थना करते रहो और उनकी कृपाके बलपर ऐसा दृढ़ निश्चय रखो, जिससे कभी कोई अनीति-अनाचार तुम्हारेद्वारा बने ही नहीं। शिष्योंको जैसा बनाना चाहते हो, स्वयं पहले अपने आचार-विचारसे, क्रिया और भावनासे वैसे ही बन जाओ! पहले अपने गुरु बनो, फिर दूसरोंके।

भगवान्को प्राप्त होनेवाली पूजा-प्रतिष्ठा और मान-बड़ाईसे सदा बचते रहो। जहाँ कोई भी पुरुष, किसी भी स्थितिमें, किसी भी कारणसे भगवान्के बदले तुम्हें उनके सिंहासनपर बैठाना चाहे, वहीं तुरंत सच्चे हृदयसे विनयपूर्ण; परंतु दृढ़तापूर्वक विरोध करके उसके अभिलाषकी जड़ ही काट डालो। याद रखो, ऐसा विचार ही तुम्हारे पतनका बीज है! देखो! तुम्हारी असावधानी या मूढ़तासे यह बो न दिया जाय। ऐसी विकट भूल न कर बैठना! **'शिव'**

संन्यासीका जीवन

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भजन, ध्यानसे पाप मिट सकते हैं, परंतु ऋण नहीं मिट सकता। पापनाशके बहुत उपाय हैं। जप, ध्यान, तप—जितने प्रकारके निष्काम कर्म हैं, निष्काम उपासना है, सबसे पापोंका नाश होता है, परंतु ऋणवाला काम सीधा नहीं है। शास्त्र तो यहाँतक कहता है कि दान लेकर ऋण चुका दो। पापसे ऋण बड़ा है। पाप करनेवाला नरकमें जा सकता है, पर ऋण लेनेवालेको तो ऋण चुकाना ही होगा। जहाँ दान एवं ऋण दोनों मिल जायँ, वहाँ और कठिनता है। राजा नृगने एक ही गाय दो बार दानमें दे दी, दोनों ब्राह्मणोंको समझाया पर वे नहीं माने, उस कारण राजाको गिरगिट बनना पड़ा। भूल थी, पर छूट नहीं हुई ताकि आगे लोग भूल न करें।

सब बात अनुभव करके देख ली कि कौन-सी बात बतानेमें लाभ है, कौन-सीमें नुकसान है। भुक्तभोगी हूँ, सब चाल चल ली। बहुत अनुभव कर लिया कि किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये। किसीकी कैसी ही चिट्ठी आ जाय, उसी तरह उत्तर दे दो। एक आदमीने पूछा—ब्रह्मचर्यका पालन करूँगा, उसे लिख दिया, विवाह कर लो।

दो मार्ग हैं—स्वार्थ, आसक्ति, ममता त्यागकर कर्म करना तथा स्वार्थ, आसक्ति एवं ममता त्यागकर स्वरूपसे कर्मोंका त्याग कर देना, दोनों ही तरहसे मुक्ति है—

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते॥

(गीता ५।३)

हे अर्जुन! जो पुरुष न किसीसे द्वेष करता है और न किसीकी आकांक्षा करता है, वह कर्मयोगी सदा संन्यासी ही समझनेयोग्य है; क्योंकि राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे रहित पुरुष सुखपूर्वक संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है।

द्वन्द्वोंसे रहित होकर चाहे जहाँ रहो। भीतरका त्याग ही मुक्ति देनेवाला है।

संन्यासी हर समय चित्तकी वृत्तियाँ उपराम रखे, दृष्टि नीची रखे। किसीसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखे, इस तरह उपरामता रखे, हर समय वैराग्यकी रस्सीको खींचकर रखे। जैसे वर्तमानमें मांससे वैराग्य है, वैसे ही भोगोंका नाम लेश भी नहीं रहे। बैठे हैं, सत्सङ्गकी बात चल रही है, किसीने अडंग-बडंगकी बात चला दी—युद्धकी, विवाहकी, कोई भी संसारकी बात पूछ ली, बस; उत्तर नहीं दे, मौन रहे। या तो वह समझ जाय, अन्यथा नारायण! नारायण! कहकर चल दे। मील-दो-मील चला जाय। भीड़-भाड़ छँट जाय, कोई दो-चार आदमी पीछेतक आ जायँ तो बैठ जाय। सत्सङ्गकी बात चल रही है, अच्छी या खराब दूसरेकी चर्चा सुने ही नहीं। वस्त्रोंका संग्रह भी न करे। एक अधोवस्त्र एवं एक उत्तरीय वस्त्र पर्याप्त है। वही ओढ़ना, वही बिछाना। किसीके यहाँ जाकर भोजन करना स्वीकार करे ही नहीं, कहींसे आ गया, वही पा लिया। एक-एक टुकड़ा जहाँ-तहाँ मिल गया, पेट भर गया। पहलेसे कोई स्वीकार न करे, न शुद्धताकी आवश्यकता है, भोजन निर्मल चाहिये। कहीं अपवित्र (अखाद्य) मिल जाय तो त्याग कर दे। अन्न, जल जहाँ मिल जाय, जिस रूपमें मिल जाय, एक पात्र या कमण्डल रख ले और ज्यादा रखे तो एक गीताकी पुस्तक रख ले। हर समय मौन रहे। भजन, ध्यान करता रहे। सर्दी लगे तो तितिक्षा करे। इस श्लोकका पाठ करे—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥

(गीता २।१४)

हे कुन्तीपुत्र! सर्दी-गर्मी और सुख-दुःखको देनेवाले इन्द्रिय और विषयोंके संयोग तो उत्पत्ति-विनाशशील और अनित्य हैं; इसलिये हे भारत! उनको तू सहन कर।

एक भगवद्विषयक चर्चाके सिवाय दूसरी चर्चा करे ही नहीं। जिस स्थानका कोई स्वामी न हो, वहाँ रह जाय। किसी चीजपर किसीका अधिकार हो, उसे काममें नहीं लाये। कहीं कुटिया बनाये ही नहीं, कुटिया बनानेकी मनमें आ जाय तो श्मशानमें चला जाय। वह उसके लिये सबसे पवित्र है। वास श्मशानमें रखे। मुर्दा जलाने लायें, उस समय जंगलमें चला जाय। कहीं कोई ऐसी झोपड़ी हो जिसका कोई स्वामी नहीं हो, उसमें रह जाय।

संन्यासीकी किस तरह करना चाहिये, यह प्रश्न ही

उठ जाय। जो कुछ कर रहा है सब करना उठ जाय, केवल शरीर-निर्वाह, भजन, ध्यान, उपरामता, वैराग्य एवं थोड़ा सत्सङ्ग करे। समयकी पाबन्दी टूट जाय, यह तो गृहस्थमें है। संस्था, मठ, कमेटी आदिका कुछ काम नहीं है। वह स्वयं जीता-जागता नियम है। उनके अनुसार जो रह सके वह उनके पास रहे। पाँच आदमी साथ हो गये तो बतानेकी आवश्यकता नहीं है, सोये हुए छोड़कर चल दे, वे ढूँढ़ते रहें, पता ही न लगे। कभी मिलना हो जाय, पूछें तो स्पष्ट बता दे।

प्रश्न—संन्यास लेनेकी स्थितिमें क्या लेख आदि लिखना होता है?

उत्तर—कुछ नहीं, गृहस्थाश्रमके साथ ही लेख आदि लिखना.... गया। सेवाका, उपकारका जो कुछ काम है, सब बट्टे खाते गया। नियमित रूपसे सत्सङ्ग नहीं होता, वहाँ तो हर समय सत्सङ्ग ही है। कोई गया तो घंटा-दो-घंटा कह दिया। कोई सुने, चाहे न सुने।

अमुक साधु आ गये, महात्मा आ गये, जँचे जहाँ बैठ जायँ, अपनी तथा दूसरेकी मान, प्रतिष्ठा सब बट्टे खाते। फिर चाहे सीतामऊ महाराज आओ, चाहे बीकानेर महाराज; कुछ मतलब नहीं है।

साथ वही रह सकता है जो शरीरको पहले ही बट्टे खाते लिख दे; क्योंकि न मालूम शरीर कहाँ पड़ जाय। किसीकी परवाह नहीं, अभी तो कोई बड़े महात्मा आ जायँ तो लम्बा-लम्बा हाथ जोड़ते हैं, फिर मुँहसे बोलनेकी भी आवश्यकता नहीं है। शुकदेवजी, ऋषभदेवजीका उदाहरण देखो।

न किसीका तिरस्कार है, न किसीका मान है, न अपना मान है। कोई चीज आकर रख गया तो उठकर चल दिया, सम्बन्ध ही नहीं रखे, किसी नियममें बँधे ही नहीं सारे नियम तोड़ दे। अपनेसे हो जाय सो हो जाय, कलका प्रोग्राम आज नहीं बनाये।

सत्सङ्गका कोई नियत समय नहीं रखे। जैसे बीत जाय वही विधि है। कोई कहे तुम विरुद्ध कर रहे हो तो उत्तर ही नहीं दे।



मोहनका सम्मोहन

(श्री जय जय बाबा)

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः।
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः
स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। ४)

भगवान्‌का यह वंशीवादन भगवान्‌के प्रति प्रेमको, गोपियोंकी उनसे मिलनेकी लालसाको अत्यन्त उकसानेवाला—बढ़ानेवाला था। यों तो श्यामसुन्दरने पहलेसे ही गोपियोंके मनको अपने वशमें कर रखा था, अब तो उनके मनकी सारी वस्तुएँ—भय, संकोच, धैर्य, मर्यादा आदिकी वृत्तियाँ भी उनसे छीन लीं। वंशीकी ध्वनि सुनते ही उनकी विचित्र दशा हो गयी। भगवान् श्रीकृष्णको पतिरूपसे प्राप्त करनेके लिये जिन्होंने एक साथ साधना की थी, वे गोपियाँ भी एक-दूसरेको सूचना न देकर, यहाँतक कि एक-दूसरेसे अपनी चेष्टाएँ छिपाकर भगवान्‌के सांनिध्यके लिये चल पड़ीं। वे इतने वेगसे चल रही थीं कि उनके कानोंके कुण्डल झोंके खा रहे थे।

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनम्—भगवत्प्रेम ही अनङ्ग है। प्रेम निराकार है, उसका कोई अङ्ग दिखायी नहीं पड़ता। यह भगवत्प्रेम भावनात्मक है। महाप्रभु चैतन्यदेवने भावकी व्याख्या इस प्रकार की है—**'प्रेमेर परम सार तार नाम भाव'** (चैतन्यचरितामृत)।

जैसे भगवान् श्रीकृष्ण शाश्वत और अनन्त हैं, वैसे ही यह अनङ्गवर्धक गीत भी अनन्त और शाश्वत है। आज भी यह गीत बज रहा है, उसको सुनानेवाली वंशी आज भी बज रही है; परंतु इस संसारके बाहरी और भीतरी कोलाहलके कारण यह गीत सुनायी नहीं देता। इस कोलाहलके नष्ट हो जानेपर महामौनकी अवस्थामें हम इस गीतको निश्चय ही सुन सकेंगे। बाहरके कोलाहलसे बचनेके लिये भगवान्‌की लीला-कथाका श्रवण, मनन, कीर्तन एक बहुत ही अच्छा उपाय है। इसी प्रकार मनका भीतरी कोलाहल मिटानेके लिये भी भगवन्नाम-जप और सत्सङ्ग करनेसे बहुत लाभ होगा।

इस संसारमें दो शक्तियाँ काम करती दिखायी दे रही

हैं। एक तो भगवान्‌की दैवी मायाकी आवरण-शक्ति और दूसरी उन्हींकी अनुग्रह-शक्ति। पहली दैवी माया भगवान्‌के स्वरूपपर अज्ञानका परदा डाल देती है और दूसरी अनुग्रह-शक्ति उस परदेको हटाकर स्वरूपका दर्शन करा देती है।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७। १४)

हे अर्जुन! यह अलौकिक और अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है; परंतु जो लोग निरन्तर मेरा भजन करते हैं, वे इस मायासे पार चले जाते हैं।

कृष्णका अर्थ होता है अपनी ओर आकर्षित करनेवाला—खींचनेवाला। एक बार उनकी प्रेममयी भक्तिके द्वारा उनके गुरुत्वाकर्षणमें चले जानेके बाद वे छोड़ते नहीं।

पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्रसे बाहर फेंकनेके लिये रॉकेटमें पूरी आणविक शक्ति भर दी जाती है। इसी प्रकार मायाके गुरुत्वाकर्षणसे बाहर जानेके लिये भगवत्प्रेमरूपी महाशक्तिका प्रयोग किया जाता है और यह कभी असफल नहीं होता। मायाके जालसे बाहर निकलनेके लिये भगवच्चरणारविन्दोंमें प्रेमा-भक्ति ही एकमात्र साधन है। ये गोपियाँ कौन हैं?

भगवान् श्रीकृष्णने गीता (१५। ७)-में कहा है—

'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।'

इस देहमें रहनेवाला जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है, इन असंख्य जीवात्माओंमेंसे जिनके पाप नष्ट हो गये हैं और जो पुण्यात्मा हैं, ऐसे दृढ़ निश्चयी भक्त मुझको सब प्रकारसे भजते हैं। यही बात भगवान् श्रीकृष्णने गीता (७। २८)-में भी कही है।

इस प्रकार जिन महापुण्यात्मा जीवोंमेंसे जो अपने अंशी परमात्मासे मिलनेकी तीव्रतासे व्याकुल हो रहे हैं, वे ही गोपियाँ हैं। इनमें पुरुष और स्त्रीका कोई भेद नहीं है।

एक बार महाभक्त मीराँबाईने वृन्दावनमें रहनेवाले जीवगोस्वामीको संदेश भेजा कि मैं आपका दर्शन करने वृन्दावन आना चाहती हूँ, कृपया स्थान और समय सूचित करें। जीवगोस्वामीने उत्तर भेजा—मैं पुरुष हूँ, स्त्रियोंके दर्शन नहीं करता।

मीराँबाईने प्रत्युत्तर भेजा—'मेरी जानकारीमें तो वृन्दावनमें एक ही पुरुष निवास करते हैं और वे हैं—बाँकेबिहारी। यह दूसरा पुरुष कहाँसे आ गया?' कहा भी गया है—**'वासुदेवः पुमानेको स्त्रीमयमितरं जगत्'** पुरुष तो एक भगवान् वासुदेव ही हैं, शेष सारा जगत् तो **'स्त्रीमयं'** अर्थात् प्रकृति ही है। संसारमें दो तत्त्व हैं—पुरुष और प्रकृति। पुरुष तो एकमेवाद्वितीय परब्रह्म परमेश्वर हैं और उनके अतिरिक्त अन्य सब प्रकृति ही है।

'गजेन्द्रमोक्ष-स्तुति' में भगवान्‌के स्वरूपका वर्णन करते हुए गजेन्द्र कहता है—

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्
न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः।
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्
निषेधशेषो जयतादशेषः॥

(श्रीमद्भा० ८। ३। २४)

अर्थात् वे भगवान् न तो देवता हैं न असुर; न मनुष्य हैं न पशु-पक्षी और न स्त्री हैं न ही नपुंसक। वे साधारण और असाधारण प्राणी भी नहीं हैं, न वे गुण हैं, न कर्म, न मर्त्य ही हैं। वे न तो कार्य हैं और न कारण। सबका निषेध करनेपर जो बाकी रहता है, वस्तुतः वही उनका स्वरूप है तथा सब कुछ भी वे ही हैं।

भक्तोंको लीलाविहारी योगेश्वरकी रासपंचाध्यायी अत्यन्त प्रिय है। भक्तिमार्गके कई आचार्य तो इन पाँच अध्यायों (श्रीमद्भा० १०। २९—३३)-को ही श्रीमद्भागवतका सार मानते हैं।

भागवतकार तो इस रासपंचाध्यायीको श्रद्धाके साथ श्रवण और वर्णन करनेका फल इस प्रकार बतलाते हैं—

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३३। ४०)

जो धीर पुरुष व्रजसुन्दरियोंके साथ भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण)-के इस चिन्मय रास-विलासका श्रद्धाके साथ बारंबार श्रवण और वर्णन करता है, उसको भगवान्‌के चरणोंमें परा भक्ति प्राप्त होती है तथा वह बहुत ही शीघ्र अपने हृदयके रोग (काम-विकार)-से छुटकारा पा लेता है। उसका काम-विकार सर्वदाके लिये नष्ट हो जाता है।

श्रीभरत-चरित्र

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गताङ्क पृ०-सं० ८९५ से आगे]

वसिष्ठजी महाराज धर्मशास्त्रके प्रकाण्ड पण्डित हैं। सूर्यवंशके कुलपुरोहित हैं। वहाँका तमाम धर्मकार्य इन्हींकी आज्ञानुसार होता रहा है। वे प्रमाण दे रहे हैं कि—यदि तुम यह मानो कि बड़े भाईके रहते छोटेको राज्य न हो तो वह तो एक सामान्य नियम है, पर पिताकी जो आज्ञा है वह विशेष धर्म है। यहाँतक पहले हो चुका है कि परशुरामजीको जमदग्निजीने कह दिया कि तुम अपनी माँका सिर काट लाओ, तब पिताकी बात मान करके परशुरामने अपनी माताका सिर काट लिया। यह तो उससे बहुत ऊँची बात है। और पिताकी आज्ञा माननेमें ययातिके पुत्रने अपना यौवन पिताको दे दिया, परंतु पिताकी आज्ञाको अमान्य करनेका पाप और अपयश नहीं लिया। इसलिये पिताकी आज्ञा-पालन करनेमें कौन-सी आज्ञा उचित है और कौन-सी अनुचित है, यह विचार नहीं करना चाहिये। पिताजी कुछ कह दें, पिताके उस वचनको मानना ही धर्म है और जो मानता है, वह सुख तथा सुयशका भागी होता है। अतः राजाकी बातको सत्य करते हुए शोक त्यागकर प्रजाका पालन करो—

अवसि नरेस बचन फुर करहू। पालहु प्रजा सोकु परिहरहू॥

(रा०च०मा० २।१७५।१)

इसके बाद कौसल्या माताने कहा—

कौसल्या धरि धीरजु कहई। पूत पथ्य गुर आयसु अहई॥
सो आदरिअ करिअ हित मानी। तजिअ बिषादु काल गति जानी॥
बन रघुपति सुरपति नरनाहू। तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू॥
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा। तुम्हही सुत सब कहँ अवलंबा॥
लखि बिधि बाम कालु कठिनाई। धीरजु धरहु मातु बलि जाई॥
सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू। प्रजा पालि परिजन दुखु हरहू॥
गुर के बचन सचिव अभिनंदनु। सुने भरत हिय हित जनु चंदनु॥
सुनी बहोरि मातु मृदु बानी। सील सनेह सरल रस सानी॥

(रा०च०मा० २।१७६।१—८)

सचिवके कहनेके बाद मैयाने कहा—बेटा! धीरज धरो। यह गुरुकी आज्ञाका जो पालन है यह पवित्र पक्ष है। इसमें अपना हित मान करके विषादको छोड़ दो। यह समयकी गति है। होना ऐसा ही था। कालके आगे किसका क्या जोर है। आज, देखो! मेरी क्या दशा है? तुम्हारे भाई राम तो वनमें हैं। महाराज स्वर्गका राज्य प्राप्त कर चुके और तुम यदि इस भाँति रोओगे, राज्य नहीं सँभालोगे तो बेटा, क्या दशा होगी। यह सारा परिवार, यह प्रजा, ये सचिवगण, ये तुम्हारी सारी माताएँ, इन सबका अवलम्बन एक तुम ही बचे हो। विधाता बड़ा वाम है—यह ठीक है। काल बहुत कठिन है, परंतु धीरज रखो। बेटा! मैं तुमपर बलिहारी जाती हूँ। तुम मेरी बात मान लो। प्रजाके सुखके लिये तुम गुरुकी बात मानो। भरत कुछ बोले नहीं। माताकी बात सुनकर भरत नहीं बोले। अब जरा भरतकी हालतका दृश्य देखिये। क्या हुआ कि जब गुरुजीने बात कही तो भरतजी सुनते रहे। गुरुके बाद जब सचिवने समझाया तब भी सुनते रहे, लेकिन जब कौसल्या मैया बोलीं तब काँप गये। फिर मनमें वही बात याद आ गयी कि रे कुलकलंकी भरत! तू कितना नीच है कि तेरे लिये माँको कहना पड़ता है कि तुम राज्य करो। यह सूर्यवंशका जो हमेशाका नियम था, उसे तोड़नेके लिये—राज्य करनेके लिये माँ कह रही हैं, तब व्याकुल हो गये—

सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरतु ब्याकुल भए।
लोचन सरोरुह स्त्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नए॥
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सीवँ सहज सनेह की॥

(रा०च०मा० २।१७६ छन्द)

भरतजीने समझा कि मैया मेरे लिय राज्य-सिंहासनपर बैठनेका आदेश दे रही है। क्यों दे रही है? इसीलिये कि मेरे मनमें राज्यकी आकाङ्क्षा थी। चाहे मैं कहूँ नहीं, परंतु यदि मेरे मनमें राज्यकी आकाङ्क्षा नहीं होती तो कैकेयी मैयाके मनमें यह बात आती कैसे? मैं अगर न जन्मा होता तो कैकेयी माँ मेरे लिये राज्य क्यों माँगती? इसलिये सारा दोष मुझपर है। समस्त अपराध मेरा है। आज माँ कौसल्याका मेरे ऊपर कितना स्नेह है। राम वनवासमें हैं और मेरे पिताजी स्वर्ग पधार गये, पर माँ चिन्तित होकर कहती है कि बेटा तू राज कर। यह माँ और मैं कैसा पूत! कितनी ऊँची माँ है और मैं कितना नीच कुलकलंकी पूत

हूँ! भरतजीके नेत्रकमलोंसे जलकी धारा बह निकली और इसमें हुआ क्या? हृदयमें जो विरहके बीज थे, वे अंकुरित हो गये। पहले केवल बीज थे। इन आँसुओंसे—माताकी वाणी सुनकर भरतजीने जो आँसू बहाये, उन आँसुओंने उनके विरहके उपजे हुए अंकुरोंको नया कर दिया। वे फफक-फफककर रोने लगे। माँ रोने लगी। वसिष्ठजीकी आँखोंमें आँसू आ गये। वामदेवजी रोने लगे। सभी लोग जो वहाँ उपस्थित थे, वे अपने तनको भूल गये कि हम कहाँ हैं?

'सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।'

(रा०च०मा० २। १७६ छन्द)

सब-के-सब वामदेवजी, वसिष्ठजी इत्यादि मन-ही-मन कहने लगे कि ये जो प्रेमकी असीम सीमा भरत हैं, इनके समान कोई नहीं होगा। भरतजीने देखा कि गुरुजी कुछ बोले नहीं, माताके कहनेपर। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सबकी एक सम्मति है। तब भरतजी बोले—

भरतु कमल कर जोरि धीर धुरंधर धीर धरि।
बचन अमिअँ जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि॥

(रा०च०मा० २। १७६ सोरठा)

वसिष्ठ मुनि, सचिव और माता—तीनोंने कहा। सबको उत्तर देना है। कहते हैं कि भरतजीने अपने हस्तकमलोंको जोड़ा। ये बड़े धीर-धुरन्धर हैं। इसलिये धैर्य धारण किया और मानो अमृतमें डुबो-डुबोकर वचन बोलते हुए सबको उत्तर देते हैं। अब क्या कहते हैं, यह बड़े महत्त्वकी चीज है। इसमें धर्म है, इसमें शील है, इसमें विनय है, इसमें विनम्रता है, इसमें राम-प्रेम है और इसमें भरतजीका अपना विचार है। बड़ी सुन्दर भाषामें कहते हैं—

मोहि उपदेसु दीन्ह गुर नीका। प्रजा सचिव संमत सबही का॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा॥
गुर पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी॥
उचित कि अनुचित किएँ बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू॥

(रा०च०मा० २। १७७। १—४)

किसीकी भी बातको यदि काटना हो, अनुचित बात हो तो बोलनेवालेको यह ध्यान रखना चाहिये कि सुननेवालेको कटु न लगे।

जितनी बातें गुरुजीने कही थीं, उन सबका भरतजीने अक्षरशः अनुमोदन किया कि गुरुजीके इस उपदेशके साथ प्रजा, मन्त्रीगण और सब सहमत हैं। इसके बाद माताजीने जो मुझे आज्ञा दी। गुरुजीने तो उपदेश दिया परंतु मैयाने जो आज्ञा दी वह बहुत उचित है। मुझे हठ त्याग करके उसका पालन करना चाहिये। गुरु, पिता, माता और स्वामी—इनकी जो हितभरी वाणी है, उनको सुन करके प्रसन्न मनसे पालन करना चाहिये और इसीमें अपना कल्याण मानना चाहिये। उनकी वाणीको सुनकर जो भले-बुरेका विचार करता है, उचित-अनुचितका विचार करता है, उसका धर्म जाता है और उसके सिरपर पाप चढ़ता है।

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन॥

(रा०च०मा० २। १७४)

भरतजीने इन बातोंका पूरा-पूरा समर्थन किया। फिर, बड़ी सुन्दर बात बोले कि—

तुम्ह तौ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई॥
जद्यपि यह समुझत हउँ नीकें। तदपि होत परितोषु न जी कें॥

(रा०च०मा० २। १७७। ५-६)

आपलोग मुझे बड़ी सरल शिक्षा देते हैं और मुझे ऐसी सीख देते हैं कि जिसके अनुसार आचरण करनेपर मेरा भला ही हो। आपके उपदेशमें, आपकी शिक्षामें मुझे कोई शंका नहीं है। आप सब मेरा कल्याण चाहते हैं। आप सब मेरे हितैषी हैं। आपका उपदेश मेरे भलेके लिये है और मुझे उसे मानना चाहिये। यह सब बातें मैं भली-भाँति जानता हूँ, परंतु क्या करूँ मेरे हृदयमें संतोष नहीं हो रहा है—

जद्यपि यह समुझत हउँ नीकें। तदपि होत परितोषु न जी कें॥

(रा०च०मा० २। १७७। ६)

इसलिये—

अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू॥

(रा०च०मा० २। १७७। ७)

अब आप मेरी प्रार्थना सुनिये। आपका उपदेश अच्छा है; मेरे हितके लिये है (संकेतसे कहा), पर मेरी प्रार्थना यह है कि आपने मुझको समझा नहीं। यदि आप मेरी दशा जान लेते तब उपदेश कुछ दूसरा होता।

ऊतरु देउँ छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहिं न साधू॥

(रा०च०मा० २। १७७। ८)

[क्रमशः]

पुष्पवाटिकामें श्रीराम और जानकी

(डॉ० श्रीसुचितनारायण प्रसादजी, एम०ए०, एम०एड्०, पी-एच०डी०)

श्रीरामचरितमानस जीवनकी अमूल्य निधि है। यह जीवनका प्रकाश है, जीवनकी शक्ति है और जीवन जीनेकी अद्भुत सीख है। गोस्वामीजी स्पष्ट शब्दोंमें घोषणा करते हैं—

जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए। ते कायर कलिकाल बिगोए॥
तृषित निरखि रबि कर भव बारी। फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी॥

(रा०च०मा० १।४३।७-८)

यह जीवन मरुस्थल है और श्रीरामचरितमानस ही इस मृण्मय जीवनके लिये चिन्मय प्रकाशज्योति है। श्रीरामचरितमानस समग्रताका सूचक है और इसमें वर्णित सातों काण्ड मानव-जीवनकी विशद व्याख्या हैं। इस ग्रन्थमें वर्णित बालकाण्डमें पुष्पवाटिका-वर्णन, सौन्दर्य और शीलका अद्भुत एवं विराट् समन्वय है। शालीन-सौन्दर्य और मर्यादाका यह गौरवपूर्ण स्थान है। यहीं मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम और जनकतनयाका प्रथम मिलन होता है—

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥

(रा०च०मा० १।२३०।३)

माँ जानकी साक्षात् जगदम्बा हैं, जगत्का पालन करनेवाली हैं और वे ही जनकसुताके रूपमें अवतरित हुई हैं—

जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुना निधान की॥

(रा०च०मा० १।१८।७)

वे श्रीरामकी प्रिया हैं। दोनोंमें कोई तात्त्विक भेद नहीं है। श्रीराम ब्रह्म हैं और श्रीसीताजी उनकी शक्ति हैं—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥

(रा०च०मा० १।१८)

दोनोंकी अभिन्नता प्रेमतत्त्वकी अनुभूतिमें ही वर्णित है। श्रीरामका मन प्रेमतत्त्वकी अनुभूतिसे सिक्त है और वह मन सीताको ही समर्पित है। श्रीरामकी वाणीमें सुन्दरकाण्डमें इसका संकेत स्पष्ट है—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥

(रा०च०मा० ५।१५।६-७)

पुष्पवाटिकामें श्रीराम और जानकीका प्रथम मिलन होता है, जो पूर्वानुरागकी अद्भुत और सौन्दर्यमयी काव्यात्मक अभिव्यक्ति है—

चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई॥

(रा०च०मा० १।२२९।८)

प्रेमकी चार अवस्थाएँ मानी गयी हैं, जिसमें पूर्वराग राम और सीताकी पुरानी प्रीति सामान्यजनोंके लिये अति दुर्गम और अति दुर्बोध है।

समय जानकर श्रीराम गुरुकी आज्ञा लेकर गुरुके पूजा-पाठके लिये फूल लाने जाते हैं। दोनों ही भाई राजा जनकके बागमें प्रवेश करते हैं—

समय जानि गुर आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥
भूप बागु बर देखेउ जाई। जहँ बसंत रितु रही लोभाई॥

(रा०च०मा० १।२२७।२-३)

'**समय जानि**' का प्रयोग द्व्यर्थक है। विश्वामित्र मुनिके पूजा-पाठका समय और आदिशक्ति सीता एवं मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामका पारस्परिक प्रथम मिलनका समय संकेतित है। पूर्व और पुरातन प्रीतिका संकेतित अर्थ ही यहाँ ध्वनित है।

तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई॥

(रा०च०मा० १।२२८।२)

'**समय जानि**' और '**तेहि अवसर**' शब्दोंमें ध्वनित अर्थ श्रीराम-सीताके प्रथम मिलनका संकेत है। इधर गुरुकी आज्ञासे श्रीराम पुष्पवाटिका आते हैं और उधर माँकी आज्ञासे सीताजी गिरिजापूजनके निमित्त पुष्पवाटिका आती हैं। सीताका संग छोड़कर एक सखी फुलवारीमें फूलोंका सौन्दर्य देख रही है। उसकी दृष्टि श्रीराम और लक्ष्मणपर जा पड़ती है। वह चकित, विस्मित और विस्फारित नेत्रोंसे श्रीराम-लक्ष्मणके रूप-सौन्दर्यमें अवगाहन करती है और उसके रोम-रोम पुलकित हो जाते हैं। उसकी अद्भुत दशा

देखकर सखियाँ भी चकित हैं—

तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नैन।
कहु कारनु निज हरष कर पूछहिं सब मृदु बैन॥

(रा०च०मा० १।२२८)

देखनेका कार्य तो नेत्र करता है और बोलनेका कार्य वाणी करती है। नेत्रोंको कहनेकी वाणी नहीं और वाणीको देखनेका सामर्थ्य नहीं है—

स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

(रा०च०मा० १।२२९।२)

किंतु इतना तो स्पष्ट है कि अपनी मोहिनी मूर्तिसे श्रीराम और लक्ष्मण जनकपुरके नर-नारियोंको अपने अधीन कर लेते हैं—

जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी॥

(रा०च०मा० १।२२९।५)

सीताके हृदयकी उत्कण्ठा भी सखियोंसे छिपी नहीं है—

सुनि हरषीं सब सखीं सयानी। सिय हियँ अति उतकंठा जानी॥

(रा०च०मा० १।२२९।३)

माँ जानकीको मुनि नारदजीकी बातोंका स्मरण हो आता है और हृदयमें पुरानी प्रीतिकी स्मृति हो आती है—

सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत॥

(रा०च०मा० १।२२९)

सीताके चकित नयन और शिशुमृगसदृश मिश्रित हाव-भावमें शालीन सौन्दर्यका निर्वाह हुआ है। मुग्धा मृगीके नयनकी भयमिश्रित उत्कण्ठा अति मर्मभरी भावाभिव्यक्ति है।

सीताजीके कंगन, किंकनी और नूपुरोंकी मधुर ध्वनि मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके चित्तपर कामदेवकी विजय-घोषणाका दम्भ भर रही है—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही॥

(रा०च०मा० १।२३०।१-२)

समग्र विश्वको अपने रूपसे आकृष्ट और मोहित करनेवाले श्रीराम सीताजीके अलौकिक रूप-लावण्यको निष्पलक निहारते हैं—

'मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल॥'

(रा०च०मा० १।२३०।४)

सीताजीका अनुपम रूप-लावण्य और श्रीरामजीका अभूतपूर्व प्रेम असीम मर्यादाके आवरणमें मुखर है। श्रीरामके चित्तपर सीताजीका सौन्दर्य अङ्कित हो जाता है—

जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई॥

(रा०च०मा० १।२३०।६)

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम स्वयं सीताजीका सौन्दर्य वर्णन करनेमें अपनी असमर्थताका बोध कराते हैं—

देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदयँ सराहत बचनु न आवा॥

(रा०च०मा० १।२३०।५)

सीताजीका सौन्दर्य शब्दोंकी भाषा नहीं जानता है—

सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई॥

(रा०च०मा० १।२३०।७)

सीताजीका सौन्दर्य सुन्दरताको भी सुन्दर करनेवाला है। अबतक सौन्दर्यभवन वस्तुतः सौन्दर्यविहीन रहा है। सीताजीके सौन्दर्यने मानो स्वयं सौन्दर्यकी दीपशिखा बनकर सौन्दर्य-भवनको प्रकाशित किया है। कवि कालिदासजी भी रघुवंश (६।६७)-में इन्दुमतिके स्वयंवर-प्रसंगमें दीपशिखाकी उपमाका निरूपण करते हैं—

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ
यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे
विवर्णभावं स स भूमिपालः॥

कवियोंने सौन्दर्यको परिभाषित और रेखांकित करनेके लिये अनेक-अनेक उपमानोंका प्रयोग कर उपमानोंको जूठा कर दिया है। अतएव उन उपमानोंसे सीताके सौन्दर्यका सादृश निरूपण कर कवि ढिठाई नहीं कर सकता है। कवि विद्वत्समाजसे उपहास लेना नहीं चाहता है—

सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहिं पटतरौं बिदेहकुमारी॥

(रा०च०मा० १।२३०।८)

अबतक कवियोंने चाँदको सौन्दर्यका प्रतिमान माना

था, किंतु सीताके मुखकी उपमामें चाँद भी नहीं टिकता है। चाँदका सौन्दर्य पूर्णत: दोषरहित नहीं है। वह कलङ्कमय है और वह विरहिणीको सन्ताप देता है—

जनमु सिंधु पुनि बंधु बिषु दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि चंदु बापुरो रंक॥
घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहिं पाई॥
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चंद्रमा तोही॥
(रा०च०मा० १।२३७, २३८।१-२)

अतएव कविवर श्रीतुलसीदासजी सीताके मुख-सौन्दर्यके उपमानोंके गढ़नेकी भूल नहीं कर सकते हैं—

बैदेही मुख पटतर दीन्हे। होइ दोषु बड़ अनुचित कीन्हे॥
(रा०च०मा० १।२३८।३)

औचित्य और मर्यादाका उल्लंघन करना महाकवि तुलसीदासजीके काव्यका सौन्दर्य नहीं है।

श्रीरामकी मुखशोभा शब्दसे बखानी नहीं जा सकती है और इधर सीताका मुख-सौन्दर्य भी शब्दोंमें समाता नहीं है। पुष्पवाटिकामें श्रीराम और सीताका मिलन वस्तुत: शील और सौन्दर्यका अनुपम मिलन है, न तो शील काव्यकी परिभाषामें समा सकता है और न सौन्दर्य ही शब्दकी सीमामें बँध सकता है। सौन्दर्यके लिये सर्वोपरि विश्वविख्यात सरस्वती, पार्वती, रति और लक्ष्मी भी सीताजीके मुखसौन्दर्यकी समता ग्रहण नहीं कर सकती हैं—

गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमासम किमि बैदेही॥
(रा०च०मा० १।२४७।५-६)

अर्थात् सरस्वती बहुत बोलनेवाली हैं, किंतु सीता परिमितभाषिणी हैं। पार्वतीमें अर्द्धाङ्गी सौन्दर्य है; क्योंकि उनका आधा अङ्ग भगवान् शङ्करका है, किंतु सीताका सौन्दर्य स्वत: पूर्ण है। रति तो बेचारी अत्यन्त दु:खी रहती है; क्योंकि उसका पति अनंग है और इस सन्तापसे ही वह दु:खिया है, किंतु सीताके पति श्रीराम स्वयं सौन्दर्यके प्रतिरूप हैं। लक्ष्मी विष और वारुणीकी सहोदरा हैं। अतएव उनसे भी सीताके सौन्दर्यकी उपमा नहीं दी जा सकती है। कविकी काव्यकल्पनामें विकल्प भी नहीं टिक रहा है—

जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥
एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल॥
(रा०च०मा० १।२४७।७-८, १।२४७)

श्रीराम सीताकी मुखछविपर विचार करते हैं—

सिय सोभा हियँ बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन बचन समय अनुहारि॥
(रा०च०मा० १।२३०)

पवित्र मनवाले अनुज श्रीलक्ष्मणसे श्रीराम सीताजीकी शोभाका अनुभवबोध प्रकट कर रहे हैं। श्रीराम रघुवंशमणि हैं। उनके स्वप्नमें भी परनारीका प्रवेश अबतक नहीं हो पाया है। श्रीरामकी दशा आज अद्भुत बन गयी है—

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी॥
(रा०च०मा० १।२३१।५-६)

यही भाव दिव्य प्रेमकी पवित्रता और मर्यादाका शील-निरूपण कर रहा है। वस्तुत: पुष्पवाटिकाका वर्णन सम्पूर्ण श्रीरामचरितमानसमें वर्णित भारतीय संस्कृतिमें निहित शील और सौन्दर्यकी अन्यतम अभिव्यक्ति है। यहीं संत कवि तुलसीदासजीके जीवनदर्शनका सौन्दर्य संकेतित है। पुरुष-प्रकृति, परिणामवाद, विवर्तवाद आदि सिद्धान्तोंका पारस्परिक भेद टूटकर एकत्व ग्रहण कर लेता है। कवि श्रीरामचरितमानसके प्रारम्भमें ही बालकाण्ड (श्लोक ५)-में यह घोषणा कर देते हैं—

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥

पुष्पवाटिकाका सौन्दर्य मर्यादित और शीलसम्पन्न है। इसकी प्रत्येक शब्दध्वनिमें माधुर्यपूर्ण भाव गूँजते हैं।

यह निष्कलुष सौन्दर्य और अलौकिक दिव्य प्रेमका संगमस्थल है। शालीनता, सौन्दर्य और भारतीय मर्यादाकी सुन्दर काव्यात्मक अभिव्यक्ति इसकी विशेषता है। यह कविहृदयकी निर्विकार और भक्तहृदयकी सुन्दरतम काव्यसर्जना है।

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ८९९ से आगे]

भगवान्‌को याद करनेसे नारदजीपर दक्षका जो शाप था, वह मिट गया और उनकी समाधि लग गयी। कामदेवने बहुत प्रयत्न किया, पर वह नारदजीको विचलित नहीं कर सका—

सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥

(मानस, बाल० १२६।४)

विकारोंका नाश भगवत्कृपासे होता है। गुणोंको अपना मान लेनेसे अभिमान होता है। नारदजीने कामदेवपर विजयको अपना गुण मान लिया, जिससे उनमें अभिमान पैदा हो गया। शिवजीने यह बात भगवान् विष्णुको न बतानेकी सलाह दी तो नारदजीने उल्टा समझ लिया कि शिवजी अकेले ही काम-विजयी रहना चाहते हैं! जिसके भीतर अभिमान होता है, उसपर अच्छी शिक्षाका भी उल्टा असर पड़ता है। वास्तवमें अच्छी बात भगवान्‌की कृपासे होती है, गलती हमारी होती है।

आछी करै सो रामजी, कै सतगुरु कै संत।
भूंडी बणै सो आपकी, ऐसी उर धारंत॥

वास्तवमें नारदजी भगवान्‌की लीलाके लिये भूमिका तैयार करते हैं।

× × × ×

पारमार्थिक मार्गमें विवेक और भावकी आवश्यकता है। भाव है—भगवान्‌में अपनापन। प्रेम अपनेपनसे होता है, क्रियासे नहीं। ज्ञानयोगमें विवेककी आवश्यकता है। भक्तियोग भगवान्‌की कृपासे सिद्ध होता है।

त्याग उसीका करना है, जो स्वत: हमारा त्याग कर रहा है और प्राप्त उसीको करना है, जो नित्यप्राप्त है। संसारको अपनी तरफसे छुट्टी दे दो, वह रहे तो मौज, जाय तो मौज!

× × × ×

भगवान् राम परब्रह्म परमात्मा हैं और सीताजी साक्षात् भक्ति अथवा ब्रह्मविद्या हैं। हमें प्रेम प्रदान करनेके लिये ही भगवान् विवाहकी लीला करते हैं। हम आज उनके विवाहके प्रसंगका पाठ करते हैं। ऐसा मौका बार-बार नहीं मिलता।

रामचरितमानसमें तुलसीदासजी बार-बार भगवान्‌की याद दिलाते हैं। शृङ्गारका वर्णन करते समय गोस्वामीजी सीताजीके लिये 'जगज्जननी' नाम देते हैं।

× × × ×

करनेमें सावधान और होनेमें प्रसन्न रहें। करना तो अपना है, पर होना भगवान्‌की कृपासे है। अनुकूलता-प्रतिकूलता दोनोंमें भगवान्‌की समान कृपा है।

हमारा जन्म-मरण मनुष्यजन्मसे शुरू हुआ है और यहीं उसकी समाप्ति होगी। मनुष्यको भगवान्‌ने स्वतन्त्रता दी है। भगवान्‌ने उसे अपने समान (नर) बनाया, जिससे वह मेरेसे भी ऊँचा बन जाय! पर वह उल्टे नीचे चला गया! सुख लेनेकी इच्छासे अपार दु:खमें फँस गया। सुखकी इच्छाका नाम ही दु:ख है। मनुष्यको सुखभोगके लिये नहीं बनाया गया है—*'एहि तन कर फल बिषय न भाई'* (मानस, उत्तर० ४४।१)।

भगवान्‌ने मनुष्यको विवेकशक्ति दी है। उस विवेक-शक्तिका दुरुपयोग करके वह ऊँच-नीच गतियोंमें चला गया। मनुष्यशरीर मानो भुसावलका स्टेशन है, जहाँसे मनुष्य कहीं भी जा सकता है। वह नरकोंका कीड़ा भी बन सकता है और भगवान्‌का मुकुटमणि भी। भागवतमें आया है—

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु याव-
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥

(श्रीमद्भा० ११।९।२९)

'अनेक जन्मोंके बाद इस परमपुरुषार्थके साधनरूप मनुष्यशरीरको, जो अनित्य होनेपर भी अत्यन्त दुर्लभ है, पाकर बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह शीघ्र-से-शीघ्र, मृत्यु आनेसे पहले ही अपने कल्याणके लिये प्रयत्न कर ले। विषयभोग तो सभी योनियोंमें प्राप्त हो सकते हैं, इसलिये उनके संग्रहमें इस अमूल्य जीवनको नहीं खोना चाहिये।'

अगर भगवान् स्वतन्त्रता न देते तो मनुष्यका कोई मूल्य नहीं होता, वह पशुकी तरह ही होता। स्वतन्त्रता

कल्याणके लिये दी है, दुरुपयोगके लिये नहीं। एक मनुष्यशरीरमें किये हुए पाप चौरासी लाख योनियाँ भोगनेपर भी बाकी रहते हैं। भगवान्‌ने परमाणु बम आदि बनानेके लिये, तरह-तरहके पाप करनेके लिये बुद्धि नहीं दी थी। अतः सावधान रहना चाहिये। सावधानी ही साधना है।

× × × ×

अभी रामायणका पाठ कर रहे हैं तो सबका हृदय अयोध्या बन रहा है—*'अवध तहाँ जहँ राम निवासू'* (मानस, अयो० ७४। २)। ऐसा मौका बड़ी कृपासे मिलता है। पाठ करते हुए सदा रामजीके साथ ही रहें, साथ ही चलें। वनवास हो जायगा तो भी रामजीके साथ ही रहें। रामजीके साथ रहकर निषादराजका प्रेम देखें। इसी तरह आप हर समय भगवान्‌के साथ रहें—**'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति'** (गीता १८। ६१)। सदा आनन्दित, मस्त रहें। यह मौका अपने बलसे, धनसे नहीं मिलता, प्रत्युत कृपासे मिलता है। यह नौ दिनका बड़ा पवित्र अनुष्ठान है। इससे पाठकी पुस्तक, स्थान आदि ही नहीं, त्रिलोकी पवित्र होती है। इसे सुनकर भगवान् भी आनन्दित हो रहे हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी भी आनन्दित हो रहे हैं। भगवान्‌के भक्त भी नित्य रहते हैं।

यहाँ बहुत बड़ा तीर्थ है; क्योंकि यहाँ रामकथारूप गङ्गाजीकी धारा बह रही है। जिस कथाको भगवान् शंकर, काकभुशुण्डि आदि कह रहे हैं, वह आज हम कलियुगी जीवोंको सुननेके लिये मिल रही है—यह भगवान्‌की कोई अलौकिक कृपा है!

× × × ×

संसारमें जो इन्द्रियोंसे दीखता है, वह नाशवान् है और जो 'है'-रूपसे अनुभवमें आता है, वह अविनाशी है। अविनाशी तत्त्व एक ही है, जो नाशवान्‌में व्याप्त है। सब बदलनेवाला है—इसका ठीक अनुभव हो जाय तो तत्त्वज्ञान हो जायगा; क्योंकि विनाशीको अविनाशी ही देख सकता है।

मैं समझ गया, मैं समझा नहीं और मैं कम समझा—बुद्धिकी इन तीनों अवस्थाओंको आप जानते हैं, बुद्धि नहीं जानती। इस प्रकार शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और अहम्‌से अपनेको अलग करके देखें तो तत्त्वज्ञान हो जायगा।

हमें रुपयों आदिके पराधीन नहीं होना है, प्रत्युत स्वाधीन होना है। स्वाधीन होंगे—भजनसे।

× × × ×

आप गृहस्थाश्रममें भगवान् श्रीरामकी तरह रहें और यह देखें कि उन्होंने माता, पिता, भाई, पत्नी आदिके साथ कैसा बर्ताव किया है। रामजीने कभी किसीका अहित नहीं किया, सबका हित-ही-हित किया। विवाहके समय पति और पत्नीने एक-दूसरेको जो वचन दिये थे, उनको याद रखो और उनका पालन करो। आपसमें प्रेम रखो।

स्त्री-जातिको दुःख देना बड़ा भारी पाप है, अपराध है। भीष्मजीके हृदयमें स्त्रीके प्रति कितना आदर था कि उन्होंने मरना स्वीकार कर लिया, पर शिखण्डीपर बाण नहीं चलाया। वे कितनी मर्यादा रखते हैं! स्त्रीपर हाथ चलाना, उसका तिरस्कार करना घोर पाप है। स्त्रीको भी चाहिये कि वह पतिका तिरस्कार, अपमान न करे। पतिको अच्छी सलाह देनेका उसको अधिकार है। बहूके सामने उसके माता-पिताकी निन्दा कभी मत करो। कन्याका गर्भपात बड़ी भारी हत्या (महापाप) है। कन्या वंशकी वृद्धि करनेवाली मातृशक्ति है।

× × × ×

गीतामें आया है—**'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः'** (२। १६) 'असत्‌की तो सत्ता विद्यमान नहीं है और सत्‌का अभाव विद्यमान नहीं है।' सब शास्त्रोंका सार इस आधे श्लोकमें आ गया है। सब शास्त्र इसकी व्याख्या हैं।

संसारमें नाशके सिवाय कुछ नहीं है। सृष्टिमात्रका प्रवाह प्रलयकी ओर जा रहा है। मनुष्यशरीर मृत्युकी ओर जा रहा है। इसका कोई भी क्षण स्थिर नहीं है। वहम हो रहा है कि हम जी रहे हैं, वास्तवमें निरन्तर मर रहे हैं। इसे याद नहीं रखना है, इसकी जागृति रखनी है। जैसे 'हम कलकत्तेमें हैं'—इसे याद नहीं करना पड़ता, प्रत्युत स्वतः इसकी जागृति रहती है।

हमें जो भी सामग्री मिली है, वह सेवाके लिये मिली है, सुख भोगनेके लिये नहीं। भोगोंकी इच्छा करनेवालेको भोगयोनि मिलेगी। ईमानदारीका नाम है 'त्याग' और बेईमानीका नाम है 'संग्रह'। रुपया निर्मल है। यह चलता रहता है और दूसरोंका काम कराता रहता है। उसे रोककर मैला मत बनाओ, उसको अशुद्ध मत करो। पापीका, कंजूसका धन किसीके काम नहीं आता, व्यर्थ ही जाता है।

× × × ×

(क्रमशः)

त्यागका परित्याग

(डॉ० श्रीजितेन्द्रकुमारजी)

मानवमें एक ऐसी स्वाभाविक दुर्बल मनोवृत्ति भी रहती है कि वह जैसा है वैसा दिख न जाय, इस मनोभावको छिपानेमें उसका विशेष प्रयत्न होता है। बच्चे जैसे हैं वैसे ही अपनेको दिखाते हैं, इसीलिये उनकी हर क्रिया क्रीडा और लीला लगती है तथा वे प्रत्येक रूपमें अच्छे लगते हैं, ईश्वरके सच्चे स्वरूप कहलाते हैं और सर्वप्रिय भी होते हैं। वे निश्छलता, निर्भीकता, नि:स्पृहता और प्रसन्नताके प्रतीक होते हैं, वे कुछ छिपाते नहीं; क्योंकि उन्हें छिपाना नहीं आता, इसलिये बालरूपके सभी उपासक होते हैं। इस स्वरूपकी कामना दूसरोंमें सभी करते हैं, किंतु इसीकी साधना स्वयं करनेका प्रयत्न किञ्चिन्मात्र भी नहीं करते। विडम्बना है कि बच्चे बड़े होनेपर सांसारिक सम्बन्धोंका आवरण धारण कर अपना सहज स्वरूप भुला देते हैं और फिर हमारे सम्पूर्ण ज्ञानका प्रयोग दुर्गुणोंको छिपानेमें ही होता है, जबकि ज्ञानका सदुपयोग दुर्गुणोंको दूर करनेमें होना चाहिये। ज्ञानके इसी वैशिष्ट्यको उद्देश्य बनाकर चलना मनुष्यकी मनुष्यताका द्योतक है। आज मनुष्यका सांसारिक ज्ञान ही उसे उसका शत्रु बना रहा है।

मनुष्यका लक्ष्य है स्वयंको तथा दूसरोंको भी ऊपर उठाना, दूसरेको नीचे गिराकर स्वयंको आगे बढ़ानेमें कदापि नहीं है, परंतु हमने अपनी सारी शक्ति दूसरोंको नीचे गिराने तथा गिराकर उसे छिपाने और उसे सही ठहरानेमें प्रयोग की है। यही कारण है कि मानव मानवसे ही भयभीत रहने लगा है। जब कि मनुष्यको मनुष्यसे डरनेका कोई कारण विद्यमान नहीं है। वह तो एक-दूसरेका रक्षक, पोषक तथा उन्नतिमें सबसे बड़ा सहयोगी है। मानव मानवकी सहायताके बिना अपना जीवन बितानेमें कभी भी समर्थ नहीं है। परोपकारी, त्यागवृत्तिधारी, सेवाभावी, सत्यवादी, अहिंसाव्रतचारी, संतोषी, तपस्वी, मनस्वी ऋषियोंकी संतान मानव आज मानवतासे छिटक रहा है, धीरे-धीरे दूर हो रहा है, शिथिल हो रहा है—इस प्रवृत्तिको किसी भी रूपमें शुभ संकेतका लक्षण नहीं कहा जा सकता।

आजकल ऐसा लगता है कि मनुष्य कोई भी कार्य कर रहा है तो एहसानके रूपमें करता दिखायी देता है। वह उसे अपना कर्तव्य न समझकर बोझके रूपमें करता है, किंतु झूठा प्रदर्शन करता है कर्तव्य-पालनका। इतना ही नहीं; बदलेमें वह पूरा प्रतिफल चाहता है। प्रकटमें तो वह लाभका त्याग करता दिखायी देता है, किंतु उसका त्याग भी दिखावा ही होता है। वस्तुत: त्याग बहुत ऊँचे दर्जेकी चीज है। त्यागके भावको तिलांजलि देना, सीखनेकी वस्तु है। त्यागके बखान करनेकी भावनाको अपनेसे दूर करना त्याग है। त्याग करके त्यागके परिणाम, उसकी प्रतिक्रिया, उसको सार्वजनिक करना अथवा त्यागसे कुछ पानेकी भावना त्याग नहीं है, बल्कि त्यागका पाखण्ड है।

विचार करनेपर निश्चित होता है कि त्याग करना उतना आवश्यक नहीं है, जितना कि त्यागके बखानका या त्यागके भावका परित्याग करना। जो त्यागके लाभका कारक न हो, अपितु संतोष और सुखका कारण हो, वही त्याग वास्तवमें त्याग है।

महाकवि कालिदास राजा दिलीपकी अनुशंसा करते हुए कहते हैं कि ज्ञानवान् होनेपर मौन रह पाना बहुत कठिन है, शक्ति रहनेपर क्षमा करना दुष्कर कार्य है तथा त्याग करनेपर त्यागकी प्रशंसाकी इच्छाका मनमें भी न होना असम्भव है—

'ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।'

(रघुवंश)

आज समाजमें पदलिप्सा इतनी बढ़ गयी है कि लोग उस पदका त्याग करनेमें न केवल संकोच करते हैं प्रत्युत पदकी गरिमाको निम्न स्तरपर लानेसे भी परहेज नहीं करते और फँसनेपर विवशतावश पद छोड़नेकी तत्परताकर त्यागका झूठा नाटक करनेसे भी नहीं चूकते। वस्तुत: त्याग शब्द मुक्त होनेके भावको प्रकट करता है, और अधिक गहराईसे संलिप्त होनेकी इच्छाको नहीं। आज त्याग संलिप्तताकी उत्कण्ठाको गहराईतक छूनेका साधन बन गया है। त्याग वस्तुत: त्यागकी भावनासे नहीं किया जा रहा है।

त्यागसे होनेवाले सांसारिक लोभजन्य लाभका त्याग ही उत्तम त्याग है। उस त्यागके प्रलोभनसे हम आज बच नहीं सके हैं, इसीलिये त्यागके यथार्थ सुख एवं संतोषसे वंचित भी हो गये हैं।

आजका त्याग आत्मप्रवञ्चनायुक्त त्याग है, उद्वेलित एवं व्यथित करनेवाला त्याग है, प्रतिक्रियाकी प्रतीक्षामें बेचैनी

बढ़ानेवाला त्याग है, संतोष और सुखको छीननेवाला त्याग है; क्योंकि यह वास्तवमें त्यागका परित्याग नहीं है, प्रत्युत प्रदर्शन है। महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास महाभारतके शान्तिपर्वमें त्यागकी महिमा बताते हुए कहते हैं—'**नास्ति त्यागसमं सुखम्**' अर्थात् त्यागके समान दूसरा कोई सुख नहीं है। त्यागका परिणाम सुख-शान्ति एवं आनन्द है। किसी भी शुभकार्यकी आन्तरिक मन:स्थिति ही उस कार्यको पूर्णत: शुभ और श्रेष्ठ बनाती है। कार्यके पीछे कार्यको करनेका उद्देश्य ही उसको महान् बनाता है। परंतु हम उस उद्देश्यको छिपाना चाहते हैं फलतः कार्यसे मिलनेवाले वास्तविक परिणामको प्राप्त नहीं कर पाते। इस सिद्धान्तका सजीव वर्णन राजा भर्तृहरि निम्न रूपमें करते हैं—

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न सन्तोषतः
सोढा दुःसहशीतवाततपनक्लेशा न तप्तं तपः।
ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणैर्न शम्भोः पदं
तत्तत् कर्म कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वञ्चितम्॥

(वैराग्यशतक १३)

अर्थात् क्षमा तो किया, किंतु असमर्थताके कारण, गृहसुख त्यागा, किंतु विवशतासे; सर्दी-गर्मी, आँधी आदिके अतिकष्ट सहे, परंतु धनोपार्जन आजीविका या पद और प्रतिष्ठाके लिये, तपस्याके लिये नहीं; प्राणोंको वशमें करके धन-लाभका तो चिन्तन किया, किंतु कल्याणकारी शिवका ध्यान नहीं किया। इस प्रकार मुनिजन जो कर्म करते हैं, वे सब हमने भी किये, किंतु मुनियोंको प्राप्त होनेवाले परिणामोंसे—फलोंसे हम वंचित ही रहे।

यही स्थिति वर्तमानमें हमारे द्वारा किये गये तथाकथित त्याग की है। त्यागके पीछेकी हमारी आन्तरिक नीति कहींसे भी त्यागको नहीं दिखाती। त्यागके पीछे हमारा उद्देश्य त्यागका नहीं है, अपितु त्यागके प्रदर्शनसे और अधिक बड़े लाभ और यशको प्राप्त करना है। इसी बातको नीतिकार भर्तृहरिने मनुष्यकी अन्त:करणकी स्वाभाविक मनोवृत्तिको बहुत स्पष्ट और सावचेत होकर उकेरा है। हमें इस श्लोकका भाव सदैव मनमें रखकर कार्य करना चाहिये तथा त्यागकी यथार्थ प्रकृतिको, त्यागके सच्चे भावको अपनेमें प्रतिष्ठित करना चाहिये ताकि त्यागके सर्वोत्तम सुख—संतोषसे हम सुखी हो सकें।

~~~o~~~

'आत्मनः प्रतिकूलानि....'

एक सिद्ध महात्माने प्रवचनके बीचमें श्रद्धालुओंसे पूछा कि मानव-जीवनका सबसे बड़ा अधर्म क्या है, जिससे हमारा जीवन सबसे अधिक प्रभावित होता है ? कई श्रद्धालुओंने अपनी बुद्धिके आधारपर कई उदाहरण दिये, किंतु महात्माजीको संतोष नहीं हुआ। वे बोले—देखो, मानव-जीवनमें हिंसा एक बहुत व्यापक अधर्म है, जो हमारे जीवनपर बहुत प्रभाव डालता है। हिंसाका स्थूल या रूढ़ अर्थ है दूसरे प्राणियोंको पीड़ा पहुँचाना, मारना या निरर्थक सताना, परंतु शास्त्रकार मात्र इसे ही हिंसा नहीं मानते। मन, वाणी और शरीरसे किसीके प्रति वैरभाव रखना, द्रोह करना, ईर्ष्या करना, क्रोध करना, पीड़ा देना तथा मारना आदि कर्म हिंसाकी श्रेणीमें आते हैं। निष्प्रयोजन कठोर वचन कहना और दूसरोंके मनको दुखाना वाचिक हिंसा है। मनमें किसीका अनिष्ट चिन्तन एवं उसके विनाशकी कामना करना मानसिक हिंसा है। शारीरिक, वाचिक एवं मानसिक हिंसासे सर्वथा परे रहना ही सच्ची मानवता है। आज समाजमें हिंसा बहुत प्रकारसे फैली हुई है। मानवोंमें परस्पर हिंसा, पशु-पक्षी आदि निरपराध प्राणियोंके प्रति हिंसा—ये हिंसाके कई रूप हैं। संसारमें निरीह प्राणियोंके प्रति हिंसा बहुधा मांसभक्षणके लोभमें ही होती है। जिह्वाके स्वादके लिये, उदरपूर्तिके लिये और मनोरंजनके लिये पशुओं और जीवोंकी हत्या सर्वोपरि हिंसा है। जहाँ हृदयमें दया है, वहाँ ईश्वर भी प्रसन्न होते हैं। दयासे बढ़कर कोई गुण नहीं है।

गाय अत्यन्त उपकारी पशु है, अदिति है, वह हमें शक्तिप्रद दूध देती है, जिससे सात्त्विकताकी वृद्धि होती है। किंतु कहीं-कहीं देखा जाता है कि उसे मात्र दूध आदि प्राप्त करनेका साधन ही समझा जाता है और उसकी ठीकसे देखभाल नहीं की जाती, यह स्वार्थपूर्ण और उपेक्षाका भाव भी हिंसाका ही एक रूप है। यह निश्चित बात है कि हम अन्य प्राणियोंके साथ जो व्यवहार करते हैं, आगे चलकर हमारे साथ भी वैसा ही होता है। अगर अपने-आपको इन प्राणियोंके शरीरमें रखकर और उसपर होनेवाली हिंसाकी कल्पना करके देखें तो हमें अनुभव होगा कि निरीह पशुको हिंसाके कारण कितना कष्ट भोगना पड़ता है। अतः मन, वचन और शरीरसे दूसरेके प्रति न द्रोह करें और न किसी प्रकारकी हिंसा ही करें। '**आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।**' जो अपने प्रतिकूल हो, वैसा व्यवहार दूसरेके साथ कदापि नहीं करना चाहिये, यही सनातन मर्यादा है।—**श्रीलाजपतरायजी सभरवाल**

~~~o~~~

आहार-शुद्धि

(ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाईजी व्यास)

अनेक जन्मोंकी और इस जन्मकी वासना मनमें रहनेसे हमारी बुद्धि उसीके अनुसार विचार और क्रिया करती है, इसी कारण वे क्रियाएँ और विचार कल्याणकारक होंगे ही, ऐसा नहीं कहा जा सकता। श्रेय अर्थात् आत्मकल्याण और प्रेय अर्थात् इन्द्रियोंके प्रिय भोग—इस प्रकार जीवोंकी दो प्रकारकी वृत्तियाँ होती हैं। अशुद्ध अन्त:करणवालोंमें श्रेय और प्रेयको जाननेकी ठीक समझ नहीं होती, परंतु शुद्ध अन्त:करणसे श्रेय और प्रेय दोनों समझमें आते हैं।

जो कल्याणमें हानिकारक है, उसका त्याग करना चाहिये—ऐसा जिसमें वर्णन है, उसे शास्त्र कहते हैं। जैसे-जैसे अन्त:करण शुद्ध होता जाता है, वह शास्त्र स्वत: समझमें आने लगता है। इस शास्त्रके कथनानुसार मोक्षमार्गके प्रवासीको दूसरेका भोजन करनेमें दोष है। उसे तो अपने घरका अथवा अपनेसे उच्च संस्कारवालोंका भोजन करना चाहिये। दूसरेके यहाँ यदि कुछ लेना आवश्यक ही हो तो मात्र दूध ले लेना चाहिये।

इस मार्गपर चलनेवालोंको जिह्वा तो वशमें करनी ही पड़ेगी। जब यही बात है तो साधक लॉज, होटल अथवा रेस्तराँमें तो खा ही कैसे सकता है? जिसका आत्मा शान्त और संस्कारी होता है, उसके हाथका बनाया भोजन अच्छा होता है, साथ ही अन्न भी शुद्ध धर्मसे प्राप्त किया हुआ होना चाहिये; क्योंकि द्रव्य-उपार्जनके संस्कार धनके साथ आते हैं। इसीलिये साधकोंको अपने घरका शुद्ध आहार और शुद्ध-उपार्जनवाला खाना चाहिये। दूसरेका तो नहीं ही खाना चाहिये; क्योंकि अनुभवियोंका तो कहना है कि इस संसारमें नीति या अनीतिसे धन कमाकर जो खानेके पदार्थ खरीदे जाते हैं, उन पदार्थोंके संस्कार, भोजन बनानेवालेके हृदयके संस्कार, परोसनेवालेके संस्कार तथा जहाँ बैठकर भोजन किया जाता है, उस जगहके संस्कार भोजन करनेवालेपर पड़ते हैं और उसीके अनुसार वासना बनती है।

घरमें अशान्त चित्तसे रसोई बनायी गयी हो तो भोजन करनेसे पता लग जाता है—यह सब मानस-शास्त्र है। इसका धीरे-धीरे अनुभव करनेसे चित्तकी शुद्धि हो रही है—ऐसा प्रतीत होने लगता है, परंतु यह शीघ्र अनुभवमें नहीं आता। संक्षेपमें सारांश यह है कि अपने घर स्वस्थ चित्तसे प्रेमपूर्वक बनाया हुआ भोजन शान्त स्थानपर बैठकर, भगवान्‌को भोग लगाकर करना चाहिये। एकान्त स्थानपर भोजन किया जाय। भोजनका स्थान स्वच्छ, सुन्दर और पवित्र होना चाहिये। भोजनके पदार्थ शरीरके अनुकूल, सात्त्विक, प्रिय, स्वच्छ, ताजे तथा शरीरको सुख, शान्ति, आरोग्य, आनन्द, बल तथा पुष्टि प्रदान करनेवाले होने चाहिये। गेहूँ और घी-दूध सात्त्विक तथा बलप्रद हैं। भोजन करते समय क्रोध अथवा क्लेश कभी नहीं करना चाहिये, बहुत शान्ति और आनन्दपूर्वक भोजन करना चाहिये। शरीरकी रक्षाके लिये ही खाना चाहिये। भूख न रहनेपर नहीं ही खाना चाहिये, स्वादके वश होकर नहीं खाना चाहिये। पुण्योंके फलस्वरूप अथवा परिश्रम करके प्राप्त मिष्टान्न अथवा स्वादिष्ट वस्तुएँ बहुत रुचिकर हों तो खायी तो जा सकती है, परंतु ध्यान रखे कि वह स्वाद जीभतक ही रहता है, बादमें कुछ नहीं। अधिक खा लिया तो चित्त अशान्त रहता है, व्याकुलता हो जाती है, नींद नहीं आती है, रोग हो जाते हैं और अन्तमें दु:खी होना पड़ता है। भाव यह कि स्वादके वश हुई जिह्वा ही रोगका मूल है।

शास्त्रानुसार शुद्ध आहार तो वह है कि जिसका बीज खानेमें न आये, जैसे पके फल और गायका दूध। उपनिषद्‌का मन्त्र है—'**आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः**' (छान्दोग्य उप० ७। २६। २) अर्थात् शुद्ध आहारका सेवन करनेसे सत्त्वकी शुद्धि होती है, अन्त:करण पवित्र बनता है, अन्त:करणके निर्मल हो जानेपर भगवत्-स्मृति अचल हो जाती है और फिर सभी द्वन्द्वोंकी निवृत्ति तथा भगवत्प्राप्तिकी योग्यता भी आ जाती है। इस दृष्टिसे आहारका असाधारण महत्त्व है। इसलिये दूध और फलोंके अतिरिक्त दूसरेका

कुछ नहीं खाना चाहिये—ऐसा विधान है। दूधकी पूड़ीवाली बात व्यवहारशास्त्रके आधारपर है।

इस संसारमें हित, मित तथा पथ्य-आहार प्राप्त करनेके लिये श्रुति, स्मृति और शिष्ट पुरुषोंने जो अनिन्दित उपाय बताये हैं, अपने वर्णाश्रम-धर्मके अनुकूल वैसे कर्म करने चाहिये।

आहारका उपयोग प्राणरक्षाके लिये है, प्राण धारण करना है तत्त्व-जिज्ञासाके लिये और तत्त्वज्ञान हो जानेपर पुनः-पुनः जन्म-मरणके चक्करमें नहीं पड़ना पड़ता और फिर जन्म-मरण एवं सांसारिक दुःख सदाके लिये मिट जाते हैं।

अन्नको शास्त्रोंमें औषधि कहा गया है एवं शरीरको स्वस्थ और सशक्त बनानेमें भी अन्न ही कारण है, इसीसे उसे औषध भी कहा गया है। साधकको अन्न औषधिके रूपमें लेना चाहिये। भोगके वश होकर जीभके स्वादके लिये न खाये। अन्नकी भूख स्वाभाविक है, जीवकृत नहीं है। शरीरमें जिह्वा स्वाद भोगनेके लिये नहीं है बल्कि शरीरमें जानेवाला अन्न हानिकारक है या हितकारक है, इसको पहचाननेके लिये यह भगवान्‌की ओरसे नियुक्त द्वारपाल है। इसलिये जिह्वासे शरीरके लिये हितकारक खुराक लेनी चाहिये। चार प्रकारके भोजन होते हैं—भक्ष्य, चोष्य, लेह्य और पेय। इन चारों प्रकारके भोजनको शरीरमें कौन पचाता है? शरीर और इन्द्रियाँ तो जड़ हैं, ये तो पचाती नहीं। यदि शरीर और इन्द्रियाँ ही भोजन पचातीं तो मुर्देका भी पचा देतीं। शरीरमें जो अग्नि भोजन पचाती है, वह है वैश्वानर नामकी अग्नि। भगवान् श्रीकृष्णने उसे अपना ही स्वरूप बताया है—**'अहं वैश्वानरो भूत्वा··· पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।'**

बाहरसे श्वास अंदर जाती है और अंदरसे बाहर आती है—यह क्रिया बराबर होती रहती है। भोजन करनेके पश्चात् शरीर शान्त हो, चित्त शान्त हो तो यह श्वास-प्रश्वासकी क्रिया समान तथा शान्तरूपसे चलती है। जिस प्रकार अधिक तेज वायु चलनेसे अग्नि ठीकसे नहीं जलती है, परंतु शान्त रूपसे धीरे-धीरे वायु चलनेपर अग्नि बराबर ठीकसे जलती है, इसी प्रकार श्वास-प्रश्वास ठीकसे चले तो वैश्वानर अग्नि खाये हुए अन्नको ठीकसे पचाती है। इसलिये भोजन करते समय तथा भोजनोपरान्त मनको शान्त और आनन्दमें रखना चाहिये एवं कठिन परिश्रम भी नहीं करना चाहिये। भोजन करते समय तथा भोजनोपरान्त क्रोध, अकुलाहट, दौड़ना, कसरत करना तथा चिन्ता करना बहुत हानिकारक है।

रातको सोनेसे एक-दो घंटे पहले भोजन कर लेना चाहिये। भोजनमें यह अच्छा लगता है, यह अच्छा नहीं लगता—ऐसा नहीं करना चाहिये। जो शरीरके लिये हानिकर न हो, वह भोजन अच्छा है, उसे आनन्दपूर्वक खाना चाहिये। खानेकी इच्छा कुछ और है, घरमें बना कुछ और है, उससे मनमें विक्षेप होता है और फिर वैसे ही खाने-पीनेके स्वप्न आते हैं। घरमें बना पवित्र भोजन कैसा भी हो, जो उसे समान रूपसे आनन्दपूर्वक भक्षण करता है, उसे महाभोक्ता कहा गया है।

सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें उपस्थ और जिह्वाके भोगोंके वश होकर जीव ठगाता है। जिह्वाके रसको जीतनेके लिये खाना है—पेटकी ज्वाला शान्त करनेके लिये खाना है, इसलिये स्वादकी इच्छा त्यागकर जो पदार्थ शरीरके अनुकूल हों, उन्हें ही खानेका मनका स्वभाव बनाना चाहिये। जिह्वाको वशमें किये बिना कामपर विजय नहीं होती और ये दोनों तत्त्वज्ञानके अतिरिक्त नहीं जीते जा सकते। सब कुछ आत्मस्वरूप दीखने लगे तभी संसारके भोगोंसे रसबुद्धि जाती है। इसलिये सादा और सुखकारी भोजन लेना चाहिये, स्वादकी लोलुपता छोड़ देनी चाहिये। जबतक मनमें विकार है तबतक स्वाद है। जो अच्छा-अच्छा भोजन करता है, अच्छे-अच्छे कपड़े पहनता है और धनवानोंके सहवासमें रहता है, उसमें और नरकमें बहुत थोड़ा अन्तर है। धनकी, स्त्रीकी, स्वादिष्ट भोजनकी, कुटुम्बके पोषणकी और मान-कीर्तिकी—ये पाँच इच्छाएँ जिसमें न हों, उसे सच्ची शान्ति मिलती है। इन पाँचोंमेंसे एक भी जबतक रहती है तबतक सच्ची शान्ति नहीं मिलती। धीरे-धीरे प्रयत्न करके इन पाँचोंका त्याग करना चाहिये। शुद्ध और पवित्र भोजन करनेसे इनका त्याग सरलतासे होता है और आत्मस्वरूपमें स्थिति होने लगती है।

[प्रेषक—श्रीरजनीकान्तजी शर्मा]



नामजपकी प्रेम-साधना

(श्रीश्याम भाईसाब)

प्रभु-प्रेमी प्रभु-प्रियतमको चाहते हैं, पर कैसे प्राप्त हों वे? कैसे सुलभ हो उनका मञ्जुल मुखदर्शन, उनका चिरसंग, उनकी सेवाका अधिकार, उनकी नित्यलीलामें प्रवेश? नित्य-लीलामें निमग्न अनुभवी कृष्णरसरसिकोंने इसका एक ही उपाय बताया है—सरल-सा उपाय और वह है—नाम-जप।

नाम-जपके लिये मालाका प्रयोग करना उपादेय है। मालामें एक सौ आठ मनके होते हैं। सौकी संख्या पूर्णताकी प्रतीक है। पूर्ण एकमात्र श्रीभगवान् ही हैं, ये सौ मनके उन परिपूर्णके ही प्रतीक हैं। शेष आठ मनके श्रीराधा-कृष्णकी अन्तरङ्ग अष्ट सखियोंके प्रतीक हैं। मालाके शिखरपर सुमेरुके रूपमें पुष्पिका सुशोभित है। सब मनकोंको समन्वित रखनेवाली यह पुष्पिका स्वयं रासेश्वरी श्रीराधाजीका प्रतीक है, उनका एक नाम पुष्पा भी है। प्रेमी भक्तोंको, सखियोंको वे श्रीकृष्णप्रेमसे पुष्पित करती हैं, समन्वित करती हैं बस, इसलिये।

नाम-जपसे लाभका सिद्धान्त निरतिशय स्पष्ट है। जैसे हम किसी व्यक्तिका नाम लें तो वह हमारी ओर दृष्टिपात करता है, इसी प्रकार हम सर्वव्यापक श्रीहरिका नाम लें तो वे हमारी ओर दृष्टिपात करेंगे। जिस प्रकार कोई कमरा सुदीर्घ समयसे बन्द पड़ा हो, उसमें अँधेरा पड़ा हो, पर सूर्य-किरण भीतर प्रवेश कर जाय तो तुरन्त प्रकाशित हो जाता है—अन्धकार स्वयं समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार हमारे पूर्वकर्म प्रभुप्राप्तिमें कितने भी बाधक क्यों न हों, करुणावरुणालयके दृष्टिदानसे हम पवित्र हो जाते हैं, मन निर्मल हो जाता है और निर्मल मनवालेको प्रभुप्राप्ति हो जाती है—***'निर्मल मन जन सो मोहि पावा।'***

जितना अधिक मनोयोगसे नामोच्चारण करेंगे—मानो उन निकटतमको निमन्त्रित कर रहे हों, नाम लेकर उन्हें पुकार रहे हों—उतनी ही अधिक गतिसे हमारा मन अमल-विमल होगा और इतना उन परमप्रियतमके लिये सुयोग्य आवास बन जायगा कि राग-द्वेष तो उसमें रह ही न पायेंगे। कोई बुरे या वैरी हों तो उनका भी वह हितचिन्तन ही करेगा—**'वासुदेवः सर्वमिति'** (गीता)। आकुल प्राणोंसे ऐसी पुकार कभी स्वतः निःसृत होगी कि प्रियतम प्रकट हो जायँगे—भाव-नयनोंके सामने, फिर भौतिक नयनोंके सामने भी। नामकी महिमा अमित है।

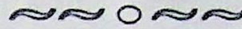
नाम-महिमापर जितना विश्वास होगा, उतना अधिक शीघ्र उसका लाभ हमें प्राप्त होगा। श्रीवृन्दावनमें विरक्त-वास कर रहे एक प्रेमी भक्त रातको द्वार बन्द नहीं करते थे कि क्या पता अपना नाम श्रवण कर वृन्दावनमें सहज रमण-भ्रमण करनेवाले ठाकुरजी कब आ निकलें। शबरीवाली प्रतीक्षा दिन-रात, पल-पल हमारे मुखसे हमारे मनसे और हमारे अन्तरतमसे भी कभी ऐसे विश्वासके साथ नाम निःसृत हो तो परमप्रियतम प्राणश्रेष्ठ हमारे भी नयनोंका विषय क्यों न बन जायँगे?

यह सुयोग प्राप्त करना असम्भव नहीं, प्रत्युत अपने हाथमें है, यदि हम भगवत्प्राप्त संतजनोंके अनुरूप अपना जीवन बना लें। स्वयं भगवान् श्रीशिवजी वैष्णवमात्रके गुरु हैं, वे कहते हैं कि भगवान् श्रीहरि तो ***'व्यापक सर्बत्र समाना'*** हैं फिर वे दृष्टिगोचर क्यों नहीं होते? क्योंकि वे ***'प्रेम तें प्रगट होहिं'*** और यह प्रेम हमारे मनमें नहीं है। मनमें तो संसार भरा पड़ा है। सारा दिन जो बातें सुनते हैं, पढ़ते हैं, देखते हैं—वे ही इसपर छाई रहती हैं, नाम-जपमें इस बाह्य प्रभावसे मुक्त कर देनेकी अनुपम शक्ति है, दर्पणपर धूल-गर्दा पड़ जाय तो सामनेकी वस्तु भी उसमें प्रतिबिम्बित नहीं होती, कपड़ेसे साफ कर दो तो हो जाती है। इसी प्रकार मनके समीपतम श्रीभगवान् हैं। नाम-जप मनको पवित्र कर उनकी छवि दर्शा देता है। वायु सर्वत्र विद्यमान है, पर पंखा झलनेसे उसका शीतल स्पर्श प्रतीत होने लगता है। भगवान् सर्वव्यापक हैं, नाम-जपसे सम्मुख प्रकट हो जाते हैं।

नाम लेते-लेते, जप करते-करते, नाम-जप एवं माला 'सिद्ध' हो जाते हैं, नाम उनमें रम जाता है। नामी रम जाते हैं। परमहंस श्रीरामकृष्ण भक्तोंकी माला हाथमें लेकर, मुट्ठीमें भरकर बता देते थे कि कितने 'आना' है। किसीकी 'एक आना' किसीकी 'चौदह आना'। 'सोलह आना' होते ही नामी सामने—अदृश्यसे दृश्यमान हो जाता है। एक पड़ोसनने एक विरक्त भक्ताका उपला भूलसे अपने उपलोंमें मिला लिया तो भक्ताने यह आग्रह पकड़ लिया कि 'उपला वापिस करो, सो भी मेरावाला ही'। नामानुरागी नामदेव सब समझते थे, बोले—'उपलोंको कान लगा-लगाकर देखो, जिस उपलेसे

विट्ठल-विट्ठलकी ध्वनि आती हो, वह इसका है।' ऐसा ही हुआ—नामी नाम-जपमें रम गये थे। मालामें नामी—भगवान्‌का प्राकट्य ठीक ऐसे हो जाता है, जैसे प्राण-प्रतिष्ठाके पश्चात् श्रीमूर्तिमें। ऐसी मालाका स्पर्श क्या, दर्शनतक जप करनेवालेके मन-नेत्रोंके सम्मुख श्रीहरिको ले आता है।

नाम-जपका न्यूनातिन्यून एक लाभ तो हमें सहज ही प्राप्त हो जायगा। हमारा नाम, नाम जपनेवालोंकी सूचीमें, नितान्त नीचे ही सही; सम्मिलित तो हो ही जायगा। नामजप करनेवाले भला कौन-कौन ? स्वयं भगवान् शंकर, उनके सेवा-स्वरूप श्रीहनुमान्‌जी और हमारे अपने युगके गुरुनानक, चैतन्य महाप्रभु-प्रभृति। नाम-महिमा शब्दातीत है, अनुभवगम्य है। इसीलिये नामप्रेमी देवर्षि नारदजी कहते हैं—उसकी ही साधना करो, उसकी ही साधना करो—'**तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम्**॥' (भक्तिसूत्र ४२)



श्रीरामकी विजय-परम्परा

(आचार्य डॉ० श्रीपवनकुमारजी शास्त्री, साहित्याचार्य, विद्यावारिधि, एम०ए०, एम०ए०, पी-एच०डी०)

देवाधिदेव महादेव भगवान् आशुतोष शिवजीने जगज्जननी जगदम्बिका पार्वतीजीको 'श्रीरामरक्षास्तोत्र' का उपदेश देते हुए बताया कि हे गिरिराजकिशोरी! श्रीरामकी सर्वदा विजय ही होती है—

रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः।
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर॥

भाव यह है कि राजाओंमें श्रेष्ठ श्रीरामजी सदा विजयी होते हैं। मैं लक्ष्मीपति भगवान् रामका भजन करता हूँ, जिन रामचन्द्रजीने सम्पूर्ण राक्षससेनाका ध्वंस कर दिया था, मैं उनको प्रणाम करता हूँ। रामसे बड़ा और कोई आश्रय नहीं है। मैं उन रामचन्द्रजीका दास हूँ। मेरा चित्त सदा राममें ही लीन रहे, हे राम! आप मेरा उद्धार कीजिये।

राजाओंके जय-पराजयके आख्यानोंसे इतिहास भरा पड़ा है। एकसे बढ़कर एक राजा हुए। उनमें समय-समयपर भिन्न-भिन्न कारणों और उद्देश्योंसे परस्पर युद्ध भी हुए। युद्धमें किसीकी जीत हुई तो कोई युद्ध हार गया। एक ही राजा कभी विजयी हुआ तो कभी पराजित। प्रायः प्रत्येक राजाको उत्कर्षापकर्षके उच्चावचसे गुजरना पड़ा। कोई भी राजा ऐसा नहीं हुआ, जिसकी सर्वदा विजय हुई हो, किंतु श्रीराम ऐसे राजा हुए जिनकी सदा विजय ही हुई है और सर्वदा विजय ही होती है।

श्रीराम राजाओंके मुकुटमणि हैं। वे भूपालचूड़ामणि हैं। श्रीराम नरश्रेष्ठ हैं, नृपश्रेष्ठ हैं। वे राजाओंमें भी राजमणि हैं। श्रीराममें ऐसे-ऐसे अद्भुत गुण हैं कि वे समस्त नागरिकों, विशिष्ट जनों, गुरुजनों, आबालवृद्धजनों, महिलाओं, निर्बलों, रसिकों, वैरागियों, योगियों तथा वीरोंको भी अत्यन्त प्रिय लगते हैं। श्रीराम इनके मनको अपने गुणोंसे अपनेमें आकर्षित कर लेते हैं। श्रीरामके सद्गुणोंपर शत्रु भी विमुग्ध हो जाते हैं।

एक बार महर्षि वाल्मीकिजीने देवर्षि नारदजीसे पूछा—मुने! इस समय इस संसारमें गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, उपकार माननेवाला, सत्यवक्ता, दृढ़प्रतिज्ञ, सदाचारी, समस्त प्राणियोंका हितसाधक, सामर्थ्यशाली तथा प्रियदर्शन कौन है? इसपर देवर्षि नारदजीने बड़ी ही प्रसन्नतासे कहा—महर्षे! इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न एक ऐसे पुरुष हैं जो रामके नामसे विख्यात हैं, वे ही मनको वशमें रखनेवाले, महाबलवान्, कान्तिमान्, धैर्यवान् और जितेन्द्रिय हैं। वे बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, वक्ता, शोभायमान तथा शत्रुसंहारक हैं। वे धर्मके ज्ञाता, सत्यप्रतिज्ञ तथा प्रजाके हितसाधनमें लगे रहनेवाले हैं। वे यशस्वी, ज्ञानी, पवित्र, जितेन्द्रिय, मनको एकाग्र रखनेवाले, प्रजापतिके समान पालक, श्रीसम्पन्न, वैरिविध्वंसक और जीवों तथा धर्मके रक्षक हैं। सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त वे श्रीरामचन्द्रजी अपनी माता कौसल्याके आनन्दको बढ़ानेवाले हैं, गम्भीरतामें समुद्र और धैर्यमें हिमालयके समान हैं—

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी॥
बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः।

× × ×

धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजानां च हिते रतः।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्॥

प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता॥
स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव॥

(वाल्मीकीय रामायण १।१।८-९, १२-१३, १७)

अनन्तानन्त गुणावलियोंके मूर्तरूप—श्रीरामने अपने जीवनमें पूर्णतया नैतिक आचरणोंका प्रयोग करके संसारके समक्ष ऐसा अनुपम उदाहरण रखा कि प्रजा उनके आचरणोंपर मुग्ध हो गयी। श्रीरामका माता-पिता एवं गुरुजनोंमें भक्तिभाव, प्रजावात्सल्य, अदम्य वीरता, साहस और पराक्रम आदि ऐसे अद्भुत गुण हैं जो सबको सहज ही आकृष्ट कर लेते हैं। मिथिलाकी पुरवासिनी स्त्रियाँ श्रीरामके इन गुणोंपर इतनी विमुग्ध हैं कि वे अपने राजा (जनक)-की प्रतिज्ञाको भी उनकी मूढ़ता करार देती हैं तथा श्रीरामके साथ सीताका विवाह बिना धनुर्भङ्ग किये ही कर देनेका प्रस्ताव रख देती हैं। इन पुरवासिनियोंकी यह उत्कट अभिलाषा है कि यदि सीताके संग इनका विवाह हो गया तो ये जब-जब जनकपुरमें आया करेंगे तब-तब इन्हें देखकर हमें आनन्द प्राप्त होता रहेगा—

देखि राम छबि कोउ एक कहई। जोगु जानकिहि यह बरु अहई॥
जौं सखि इन्हहि देख नरनाहू। पन परिहरि हठि करइ बिबाहू॥
सखि परंतु पनु राउ न तजई। बिधि बस हठि अबिबेकहि भजई॥
सखि हमरें आरति अति तातें। कबहुँक ए आवहिं एहि नातें॥

(रा०च०मा० १।२२२।१-२, ४, ८)

गुणार्णव श्रीराम सर्वथा गुणातीत हैं। वे सर्वथा अमानी हैं। उन्हें अपने गुणोंका किञ्चिदपि अभिमान नहीं है अपितु वे अपने गुणोंसे उपार्जित विजयश्रीका श्रेय भी दूसरोंको दे देते हैं। तीनों लोकोंको संत्रास दे रहे रावणपर जब उन्होंने विजयश्री प्राप्त की तो उन्होंने विजयश्रीका श्रेय वानरों, गुरुजनों आदिको इस प्रकार सौंप दिया कि मानो वे ही इसके सच्चे अधिकारी हैं। अपने पिता दशरथसे उन्होंने इस प्रकार निवेदन किया—

तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ। जीत्यों अजय निसाचर राऊ॥

(रा०च०मा० ६।११२।३)

श्रीरामने वानरोंको विदा करते समय उनसे कहा—

तुम्हरें बल मैं रावनु मारयो। तिलक बिभीषन कहँ पुनि सारयो॥

(रा०च०मा० ६।११८।४)

श्रीरामने विभीषणादि सखाओंसे गुरु वसिष्ठका परिचय देते हुए कहा—

गुर बसिष्ट कुलपूज्य हमारे। इन्ह की कृपाँ दनुज रन मारे॥

(रा०च०मा० ७।८।६)

राजा दशरथने देखा कि अपने चरित्रसे श्रीरामने पुरवासियोंका मन आकृष्ट कर लिया है, लोग श्रीराममें अनुरक्त हैं। तब उन्होंने सम्पूर्ण जनपदवासियोंसे सुनकर तथा स्वयं निरीक्षण एवं परीक्षण करके श्रीरामको राज्य देनेका संकल्प किया। सम्पूर्ण प्रजाने भी उनकी इच्छाको सिर-माथे लगाया और उत्साहपूर्वक राजा दशरथकी इच्छाओंका समर्थन भी किया, किंतु इतनी लोकप्रतिष्ठा प्राप्त करके भी श्रीरामने यही माना कि अभी नीति पूरी नहीं हुई है। इसलिये वे राजगद्दीपर तबतक नहीं बैठे जबतक कि उन्होंने रावणादि शत्रुओंके भावी भयसे अयोध्याकी जनताको मुक्ति न दिला दी। इसीलिये भगवान् शिव कहते हैं कि श्रीरामकी सर्वदा विजय ही होती है।

लोकमें पूज्य होना अलग बात है और लोकद्वारा आराधित होना अलग बात है। लोकमें पूज्यत्वकी स्थिति प्राप्त करके भी कोई व्यक्ति लोकाराध्यत्व तबतक नहीं प्राप्त कर सकता जबतक कि वह लोकपूज्यत्व गुणमें प्रतिबन्धक (बाधक) और मदान्ध बना देनेवाले भार्यादि परिजनोंमें स्नेह-दया-सौख्यादि मूलक राग-द्वेषसे मुक्त नहीं हो जाता। इन राग-द्वेषके दुर्गुणोंको समाप्त करनेके लिये श्रीरामने गुरु और पुरोहित आदिको मर्यादाके रूपमें सम्मुख रखा, जिसके कारण वे राग-द्वेषसे मुक्त रह सके। इस लोकाराधनके संदर्भमें भगवान् श्रीराम स्वयं कहते हैं—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

(उत्तररामचरित १।१२)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लोकमें वास्तविक पूज्यत्व और आराध्यत्वकी स्थिति प्राप्त करना कितना कठिन है। इसमें केवल परमार्थ हितसाधनका भाव ही निहित रहता है। हमें राजाओंके राजा भगवान् श्रीरामचन्द्रकी इस अद्भुत एवं चिरस्थायी विजय-परम्परा एवं गुणावलीका अनुशीलन करना चाहिये, जिससे सब प्रकारका कल्याण सध जाता है। श्रीराम सबके लिये सर्वथा अनुवर्तनीय हैं—**'रामादिवत् वर्तितव्यम्।'**

~~०~~

यह कैसी मानवता!

(श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन)

तत्त्वदर्शी संतोंने एक अत्यन्त मार्मिक बात कही है कि रुपयोंसे वस्तु श्रेष्ठ है, वस्तुसे व्यक्ति श्रेष्ठ है, व्यक्तिसे विवेक श्रेष्ठ है और विवेकसे परमात्मतत्त्व श्रेष्ठ है। इस बातपर प्रत्येक समझदार मनुष्यको विशेषतासे विचार करना चाहिये।

सबसे निकृष्ट वस्तु है—रुपया। कारण कि रुपया वस्तु-विनिमयका साधन होनेसे केवल विनिमयके काम ही आता है, स्वयं कुछ भी काम नहीं आता। इसलिये संतोंने रुपयेको मल-मूत्र तथा रद्दीसे भी निकृष्ट बताया है; क्योंकि मल-मूत्र भी सूअर आदि पशुओंके काम आते हैं। मूत्र रोगोंकी चिकित्सामें काम आता है। रद्दी भी आग जलाने आदिके काम आती है। परंतु रुपया किसीके कुछ काम नहीं आता। तात्पर्य है कि रुपया स्वयं किसी काम नहीं आता, अपितु उसका त्याग (खर्च) ही काम आता है।

रुपयोंसे वस्तु श्रेष्ठ है; क्योंकि वस्तु खुद खाने, पीने, पहनने, ओढ़ने आदिके काम आती है। वस्तुओंसे ही सब प्राणियोंका जीवन चलता है। मनुष्यका जीवन-निर्वाह अन्न-जल-वस्त्र आदि वस्तुओंसे ही होता है। वस्तुओंसे भी पशु-पक्षी श्रेष्ठ हैं; क्योंकि वस्तुएँ जड़ (निष्प्राण) हैं, पशु-पक्षी चेतन (प्राणयुक्त) हैं। पशु-पक्षी प्राकृतिक दोषोंको दूर करके मनुष्यमात्रकी अनेक प्रकारसे सहायता करते हैं। जहाँ पशु रहते हैं, वह जंगल शुद्ध रहता है। वहाँकी हवा भी शुद्ध और नीरोग करनेवाली होती है। गन्दगी, अशुद्धि वहीं आती है, जहाँ मनुष्य रहते हैं! पशु-पक्षियोंमें भी गाय सबसे श्रेष्ठ है। गायका शरीर जितना पवित्र है, उतना पवित्र किसी भी प्राणीका शरीर नहीं है। प्राणियोंके मल-मूत्र महान् अपवित्र होते हैं, पर गायके मल-मूत्र (गोबर-गोमूत्र) भी पवित्र होते हैं! गायके गोबर-गोमूत्रमें तथा घी-दूधमें अनेक रोगोंका नाश करनेकी अद्भुत शक्ति है। उस गायसे भी मनुष्य श्रेष्ठ है; क्योंकि मनुष्यमें जो विवेक-शक्ति है, वह गाय आदि किसी भी प्राणीमें नहीं है।

अपनी विवेक-शक्तिका सदुपयोग करके मनुष्य इतना विकास (उन्नति) कर सकता है, जिसकी कोई सीमा नहीं है। जैसे वृक्ष-पौधे आकाशमें कितना ऊँचा उठ सकते हैं अथवा पक्षी आकाशमें कितना ऊँचा उड़ सकते हैं, इसकी कोई निश्चित सीमा नहीं है, वैसे ही मनुष्यकी उन्नतिकी भी कोई सीमा नहीं है। अपनी विवेकशक्तिका दुरुपयोग करके मनुष्य नीचे-से-नीचे नरकोंमें भी जा सकता है और सदुपयोग करके ऊँचे-से-ऊँचे स्वर्गादि लोकोंमें भी जा सकता है, यहाँतक कि जन्म-मरणसे सदाके लिये मुक्त होकर भगवान्‌के धाममें भी जा सकता है। इस विवेकशक्तिका दुरुपयोग करके वह अणुबम आदि अस्त्र-शस्त्र बनाकर मनुष्यजातिका विनाश भी कर सकता है और सदुपयोग करके वह विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कारोंके द्वारा मनुष्यजातिकी महान् सेवा भी कर सकता है।

विवेकशक्तिसे भी परमात्मतत्त्व श्रेष्ठ है, जिसे प्राप्त करनेके बाद फिर कुछ भी करना, जानना और पाना शेष नहीं रहता। परमात्मतत्त्वसे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है—

'पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः॥'

(कठोपनिषद् १।३।११)

उपर्युक्त विवेचनसे यह बात सिद्ध हो गयी कि रुपयेसे निकृष्ट कुछ नहीं है और परमात्मासे श्रेष्ठ कुछ नहीं है। कितने खेदकी बात है कि आज सबसे निकृष्ट रुपयेको मनुष्यने सर्वश्रेष्ठ मान लिया है! पैरोंमें धारण करनेयोग्य जूतीको सिरपर धारण कर लिया है! रुपयोंको सर्वश्रेष्ठ माननेसे मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है, वह अन्धा हो गया है, बेहोश हो गया है, पशुओंसे भी नीचे गिर गया है। रुपयोंको अधिक महत्त्व देनेके परिणामस्वरूप मनुष्यका कितना पतन हो गया है, इसकी किञ्चित् झाँकी देखिये—

चरित्रका नाश

एक कहावत है—

If wealth is lost, nothing is lost,
If health is lost, something is lost,
If character is lost, everything is lost.

अर्थात् 'धन गया तो कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया तो कुछ गया और चरित्र गया तो सब कुछ गया!' परंतु आज लोगोंमें इस कहावतसे उल्टी मान्यता देखनेमें आ रही है—चरित्र गया तो कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया तो कुछ गया और धन गया तो सब कुछ गया! रुपयोंका

महत्त्व इतना बढ़ गया है कि उसके बदले अपना चरित्र भी बेचा जा रहा है। धनके लोभसे कुछ अच्छे घरोंकी स्त्रियाँ भी दुष्कर्ममें प्रवृत्त हो रही हैं। विदेशोंमें तो स्त्रियाँ अपनेसे अत्यधिक बड़ी उम्रके (वृद्ध) धनी पुरुषोंके साथ भी विवाह कर लेती हैं कि यह बूढ़ा जल्दी मर जायगा तो इसका धन हमारे हाथ आ जायगा, फिर हम दूसरा विवाह कर लेंगी! एक नृत्यांगनाके मुखसे यह कहते सुना था कि यदि रुपये मिलते हों तो मैं पशुके साथ भी नृत्य कर लूँगी! समाजमें दुश्चरित्र धनीका जितना सम्मान है, उतना सच्चरित्र निर्धनका नहीं।

धर्मका नाश

आज धार्मिक कार्योंमें भी रुपयोंकी महत्ता हो रही है। वास्तवमें धर्मका पालन रुपयोंसे नहीं होता। जहाँ धनकी महत्ता रहती है, वहाँ धर्मके रूपमें अधर्म ही रहता है। शास्त्रोंमें स्पष्ट कहा गया है—

अथैश्वर्यविमूढो हि श्रेयसो भ्रश्यते द्विजः।
अर्थसम्पद्विमोहाय विमोहो नरकाय च॥
तस्मादर्थमनर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्।
यस्य धर्मार्थमर्थेहा तस्यानीहा गरीयसी॥
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्।
योऽर्थेन साध्यते धर्मः क्षयिष्णुः स प्रकीर्तितः॥
यः परार्थे परित्यागः सोऽक्षयो मुक्तिलक्षणः॥

(पद्मपुराण सृष्टि० १९। २५०—२५३)

'धन-सम्पत्ति मोहमें डालनेवाली होती है और मोह नरकमें गिराता है। इसलिये कल्याणकामी पुरुषको अनर्थके साधन अर्थको दूरसे ही त्याग देना चाहिये। जिसे धर्मके लिये धन-संग्रहकी इच्छा होती है, उसके लिये उस इच्छाका त्याग ही श्रेष्ठ है; क्योंकि कीचड़ लगाकर धोनेकी अपेक्षा कीचड़का स्पर्श न करना ही उत्तम है। धनके द्वारा जो धर्म किया जाता है, वह नाशवान् माना गया है। दूसरोंके हितके लिये जो धनका परित्याग है, वह अक्षय तथा मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला है।'

धर्मके लिये धनकी आवश्यकता नहीं है। यदि ऐसी बात होती तो बेचारे गरीब लोग धर्मका पालन कैसे करते? वास्तवमें गरीब लोग जितना धर्मका पालन करते हैं, उतना धनीलोग नहीं करते। कारण कि धर्म धनसे नहीं, मनसे होता है। जिनके भीतर धनका महत्त्व है, वे आसुरी सम्पत्तिवाले होते हैं। उनके भाव होते हैं—

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः॥

(गीता १६। १५)

'हम धनवान् हैं, बहुत-से मनुष्य हमारे पास हैं, हमारे समान दूसरा कौन है? हम खूब यज्ञ करेंगे, दान देंगे और मौज करेंगे—इस तरह वे अज्ञानसे मोहित रहते हैं।'

रुपयोंका महत्त्व बढ़नेके कारण आज त्यागी-वैरागी संतोंका अभाव हो रहा है और कथावाचकोंकी वृद्धि हो रही है; क्योंकि कथावाचन रुपये कमानेका एक अच्छा व्यवसाय बन गया है। जिसके हृदयमें रुपयोंका महत्त्व है, वह कभी धर्मात्मा नहीं हो सकता। वह कोई धर्मका कार्य भी करेगा तो लोग उससे लाभ नहीं उठा सकेंगे। लोभी व्यक्तिका पैसा महान् अशुद्ध होता है।

गुरुभावका नाश

जो गुरु कभी सबका स्वामी हुआ करता था, वह आज खुद धनका दास बन गया है। धन इकट्ठा करनेके लिये वह तरह-तरहके नाटक खेल रहा है, अभिनय कर रहा है। धनीलोग आश्रममें आते हैं तो गुरुजी ललचायी आँखोंसे उनकी तरफ ताकते रहते हैं कि कब ये रुपये निकालनेके लिये अपनी जेबमें हाथ डालेंगे! पर धनीलोग भी जल्दी पिघलनवाले नहीं होते।

आज गुरु-शिष्यके पवित्र सम्बन्धमें भी रुपयोंकी मुख्यता हो रही है। गुरु उसीको चेला बनाता है, जिससे रुपये मिलनेकी सम्भावना हो अथवा जो रुपये कमाकर दे सके। पाखण्डी गुरु रुपयोंके बदले भगवान्‌को, मुक्तिको बेचना चाहते हैं और चेले रुपयोंके बदले गुरुको खरीदना चाहते हैं। गुरुकी दृष्टि चेलेके धन और स्त्रीपर रहती है तथा चेलेकी दृष्टि गुरुकी गद्दी अथवा आश्रमपर रहती है।

विश्वासघात

विश्वासघातसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। अन्य पाप तो फल भुगताकर नष्ट हो जाते हैं, पर विश्वासघातरूपी महापाप कभी नष्ट नहीं होता—

ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता राजन् कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥

(महाभारत, शान्ति० १७२। २५; २७१। ११)

'राजन्! ब्रह्महत्यारे, शराबी, चोर तथा व्रतभंग

करनेवालोंके लिये तो शास्त्रमें प्रायश्चित्तका विधान है, पर कृतघ्नके उद्धारका कोई उपाय नहीं है।'

विश्वासघातिनां पुंसां मित्रद्रोहकृतां तथा।
तेषां गतिर्न वेदेषु पुराणेषु च का कथा॥

(स्कन्दपुराण, अव०रेवा० २०९। ९१-९२)

'विश्वासघात तथा मित्रद्रोह करनेवाले मनुष्योंकी गतिका वर्णन वेदोंमें भी नहीं मिलता, फिर पुराणोंका तो कहना ही क्या है!'

आज व्यापार-जगत्‌में विश्वासघात करना एक सामान्य बात हो रही है। दूसरेका पैसा, उधारका पैसा हड़पनेमें सब चतुर हो रहे हैं। नरकोंमें ले जानेके लिये यह चतुराई बहुत काम आती है! न तो ईश्वरपर विश्वास है कि उसकी कृपासे मिलेगा, न अपने भाग्यपर विश्वास है कि जो भाग्यमें लिखा है, वह मिलेगा ही और न अपनेपर विश्वास है कि हम मेहनत करके कमा लेंगे। विश्वास है धोखेपर, विश्वासघातपर, ठगीपर, चोरीपर! किसी तरह मुफ्तमें दूसरेका पैसा मिल जाय! जब मौत आयेगी, तब एक कौड़ी भी साथ चलेगी नहीं और रत्तीभर पाप भी पीछे रहेगा नहीं!

निर्धनोंका तिरस्कार

रुपयोंका महत्त्व बढ़नेसे धनियोंका सम्मान और निर्धनोंका तिरस्कार होना स्वाभाविक है। विचारपूर्वक देखें तो धनियोंका सम्मान निर्धनोंके कारणसे ही है। यदि निर्धन न होते, सभी धनी होते तो धनियोंका सम्मान कौन करता?

धनीलोग दान देते हैं तो उसमें बड़प्पनका अनुभव करते हैं और अपना प्रचार करते हैं। परंतु वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो दान एक टैक्स है, कोई बड़ी बात नहीं है। जैसे अधिक आयपर टैक्स लगता है, वैसे ही अधिक धनपर दानरूपी टैक्स लगता है! कोई व्यक्ति इस बातमें बड़प्पनका अनुभव नहीं करता और प्रचार भी नहीं करता कि मैंने इतना टैक्स दिया है। परंतु धनीलोग दान देते हैं तो अखबारमें छपवाते हैं, लाउडस्पीकरमें सूचना करवाते हैं, दान-दाताओंकी सूचीमें अपना नाम लिखवाते हैं। धनियोंके पास रुपया तो निर्धनोंसे आया है, पर मुहर अपने नामकी लगाते हैं। लोग उनके आगे सिर झुकाते हैं तो उनकी छाती फूल जाती है पर कोई उन्हें समझाये कि सेठजी, भूलमें मत रहिये; लोग आपके आगे नहीं, रुपयोंके आगे सिर झुका रहे हैं। रुपये पासमें न हों तो कोई आपकी ओर ताकेगा भी नहीं। यह रुपयोंकी इज्जत है, आपकी नहीं। आपकी तो बेइज्जती ही है!

धनीलोग अपने नामके लिये बाहर तो बड़े-बड़े दान करते हैं, पर उनके घरके गरीब नौकर दु:ख पाते हैं! उन धनीलोगोंकी असलियत जाननी हो तो एकान्तमें उनके नौकरसे मिलकर पूछिये।

दहेजकी माँग

दहेज देना अथवा लेना दोष नहीं है, दोष है—दहेज माँगना अर्थात् लोभ। माता-पिता पुत्रकी ही भाँति कन्याको जन्म देते हैं, सब कठिनाइयाँ सहकर उसका पालन-पोषण करते हैं, उसे पढ़ा-लिखाकर योग्य बनाते हैं। फिर वे उस कन्याके लिये सुयोग्य वर ढूँढ़कर उसके साथ विवाह करते हैं। वरपक्ष भी अपनी वंश-परम्परा चलानेके लिये उस कन्याको स्वीकार करता है। इसे 'कन्यादान' कहते हैं और यह सर्वविदित है कि दान लेनेवालेका हाथ नीचे रहता है और देनेवालेका हाथ ऊँचा रहता है अर्थात् लेनेवाला नीचा और देनेवाला ऊँचा रहता है। परंतु आज उल्टी रीति चल रही है। देनेवाला तो नम्र होकर देता है और लेनेवाला बेशर्म होकर भूखे भिखारीकी तरह दहेज माँगता है! जैसे गीधकी दृष्टि मांसपर रहती है, वैसे ही उसकी दृष्टि दहेजपर रहती है, कन्यारूपी अमूल्य धनपर नहीं; क्योंकि रुपयोंके लोभसे उसकी बुद्धि पूरी तरह भ्रष्ट हो चुकी है। दहेजके लालचमें वह अपने बेटेको भी नीलाम कर देता है। मँगता बननेमें उसे शर्म भी नहीं आती। शर्म आये भी क्यों; क्योंकि अब वह बिना सींग-पूँछके पशु बन चुका है। उसकी मनुष्यता मर चुकी है। इसलिये दहेजके लोभमें वह बहूकी हत्या करनेमें भी संकोच नहीं करता। यह कुप्रथा दहेज नहीं देनेसे बन्द नहीं होगी, अपितु दहेज नहीं लेनेसे बन्द होगी।

पारस्परिक सद्भावका नाश

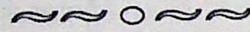
पहले कुटुम्बमें, समाजमें, गाँवमें, नगरमें, प्रान्तमें, देशमें, विश्वमें मानव-समाजके बीच जो स्वाभाविक सद्भाव था, प्रेम था, उसे आज रुपयोंके महत्त्वने नष्ट कर दिया है। अब प्रत्येक सम्बन्धके बीच रुपया मुख्य हो गया है। जो धर्मके नामपर एक नहीं होते, वे रुपयोंके लिये (बाहरसे) एक हो जायँगे! धर्म रुपयोंसे भी घटिया हो गया! रुपयोंके लोभने प्रेमको खा लिया है। समाजके प्रत्येक पदपर व्यक्ति

दूसरोंको लूटनेके लिये बैठा है।

डॉक्टरकी दृष्टि रोगीकी नीरोगताकी तरफ नहीं है, अपितु रुपयोंकी तरफ है कि अब यह जालमें फँस गया है, इससे अधिक-से-अधिक रुपये कैसे ऐंठे जायँ! पहले वैद्यलोग रोगीकी नब्ज आदि देखकर अपनी बुद्धि लगाते थे और रोगका निदान करते थे, पर अब डॉक्टर सीधे तरह-तरहकी मशीनी जाँच लिख देते हैं; क्योंकि उन्हें प्रत्येक जाँचमें कमीशन मिलती है। स्कूल-कॉलेजोंमें भी 'डोनेशन' (घूस) देकर दाखिला मिलता है। अध्यापक स्कूलमें भलीभाँति नहीं पढ़ाते, जिससे विद्यार्थी ट्यूशन लगानेके लिये मजबूर हो जाता है। कोई किसीकी सहायता, सेवा या उपकार भी करता है तो उसमें भी उसकी दृष्टि पैसा कमानेकी तरफ ही रहती है। बिना पैसेके कोई किसीके लिये कुछ करना नहीं चाहता।

रुपयोंके लोभसे संसारमें इतनी भयंकर-भयंकर बुराइयाँ फैल रही हैं, जिनकी कल्पनासे भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। बड़े शहरोंमें युवा व्यक्तियोंका अपहरण करके उनके गुर्दे आदि निकालकर बेच दिये जाते हैं। रुपयोंके लिये गायोंकी हत्या की जा रही है। रुपयोंके लोभसे जीव-हत्या, देह-व्यापार, देशद्रोह आदि बड़े-बड़े पाप हो रहे हैं। रुपयोंके लोभसे तरह-तरहके नशीले पदार्थोंका व्यापार चल रहा है, जिससे युवावर्गका जीवन भ्रष्ट हो रहा है। बड़े-बड़े अपराधी भी रुपये देकर कानूनके शिकंजेसे सुगमतापूर्वक छूट जाते हैं और स्वतन्त्र घूमते हैं। तथाकथित नेतालोग रुपये इकट्ठे करनेके लिये ही कुर्सीपर बैठते हैं, न कि जनताकी सेवाके लिये। पहले जमानेमें डाकूलोग डाका डालने आते थे तो लोग रक्षाके लिये पुलिसको बुलाते थे, पर अब वे डाका डालने आते हैं तो पुलिसको साथ लेकर आते हैं! मनुष्योंके द्वारा पैदा होनेवाले रुपये अब भस्मासुर बनकर मनुष्योंका ही नाश कर रहे हैं। रुपयोंके लोभसे होनेवाले पापोंकी गणना नहीं की जा सकती। जो वस्तु-विनिमयका 'साधन' था, वह अब 'साध्य' बन गया है।

रुपया अपनी जगह बहुत कामका है, पर उसे अधिक महत्त्व देनेसे मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। जूती पैरोंके लिये बहुत कामकी है, पर कोई उसे सिरपर धारण कर ले तो उसे आप क्या कहेंगे?



गीता-गीतिका

है अनन्त विज्ञान-सागरों का निचोड़ ही गीता में।
सृष्टिमात्र का भाग्य जागकर समा गया है गीता में॥
कर्मज्ञान फिर भक्तिमार्ग उपदेश आ गया गीता में।
निखिल विश्व की शुचिता का सन्देश आ गया गीता में॥
अर्जुन की सारी प्रश्नावली अपनी जानो गीता में।
एक एक श्रीकृष्ण वाक्य को मन्त्र समझ लो गीता में॥
सारे अवतारों की गाथाओं का वैभव गीता में।
निज जीवन की परम सफलता को पहचानो गीता में॥
अल्पधर्म को धार महाभय परित्राण है गीता में।
जड़-चेतन के रूप-रूप में ईश्वर-दर्शन गीता में॥
दिव्य विभूति अनन्त विश्व में व्याप्त बतायी गीता में।
सन्देहों को तो जड़ से ही दूर कर दिया गीता में॥
जीवन के संग्राम जीत लो, एक-एक कर गीता में।
देव असुर का भेद दिखा, देवत्व जगाया गीता में॥
त्रिगुणात्मक संसार-सार भी प्रकट हो गया गीता में।
लोष्ट-अश्म-कांचन की समता को भी समझो गीता में॥

—डॉ० श्रीशिवदत्तशर्माजी चतुर्वेदी



जीवनमें संस्कारोंकी उपयोगिता और उनकी आवश्यकता

(डॉ० श्रीरामकिशोरजी मिश्र, साहित्य-व्याकरणाचार्य, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

जीवनमें संस्कार अत्यन्त उपयोगी और आवश्यक हैं। संस्कारोंसे सम्पन्न होनेपर ही मनुष्य सुसंस्कृत, चरित्रवान् और सदाचारी मानव कहलाता है। '**सम्**' उपसर्गपूर्वक '**कृ**' धातुसे '**घञ्**' प्रत्यय करनेपर 'संस्कार' शब्द निष्पन्न होता है। संस्कारका सामान्य अर्थ है—शारीरिक एवं मानसिक मलोंका अपाकरण। मानवजीवनको पवित्र तथा चमत्कारपूर्ण बनानेवाले विशिष्ट कर्मोंको संस्कार कहा जाता है। हमारे ऋषियोंने मानव-जीवनमें गुणोंका आधान करनेके लिये संस्कारोंका विधान किया है। संस्कारसे मुख्यतया दो प्रकारकी क्रियाएँ होती हैं—१-मलापनयन २-गुणाधान। वस्तुतः गुण एवं योग्यताका आधान करनेवाली क्रियाएँ ही संस्कार हैं। संस्कार गर्भसे ही प्रारम्भ हो जाता है, जिसे गर्भाधान कहते हैं। गर्भसम्बन्धी मलोंका अपनयन जबतक नहीं कर लिया जाता, तबतक व्यक्ति आर्षेय नहीं बनता। जबतक व्यक्ति आर्षेय नहीं बनता, तबतक वह हव्य-कव्य देनेका अधिकारी भी नहीं होता। कौषीतकिब्राह्मण (३। २६)-में लिखा है कि संस्कार-हीन मनुष्यद्वारा प्रदत्त वस्तुएँ देवता भी ग्रहण नहीं करते—

'न वा अनार्षेयस्य देवता हविरश्नन्ति।'

भगवान् मनु (मनुस्मृति २। २७)-ने कहा है कि जातकर्म, चूडाकर्म तथा उपनयन आदि संस्कारोंमें किये गये हवन आदि कर्मोंसे गर्भसम्बन्धी सभी मलिनताएँ नष्ट हो जाती हैं।

संस्कार ही हमारी अविच्छिन्न सांस्कृतिक परम्पराके प्राण हैं। जबतक व्यक्तिके जातकर्म आदि संस्कार नहीं किये जाते, तबतक वह अव्रती कहलाता है और उसके द्वारा प्रदत्त हविको देवता ग्रहण नहीं करते। जैसा कि ऐतरेयब्राह्मण (७। १२)-में लिखा है—

'न ह वा अव्रतस्य देवा हविरश्नन्ति।'

अतः भारतीय सनातनधर्म तथा संस्कृतिमें संस्कारोंका सर्वाधिक महत्त्व है। संस्कार ही सद्विचार और सदाचरणके नियामक हैं। संस्कार गृह्यसूत्रोंके विषयक्षेत्रमें आते हैं। अधिकांश गृह्यसूत्रोंमें अन्त्येष्टि-संस्कारका उल्लेख नहीं किया गया है। उनमें विवाह-संस्कारसे समावर्तन-संस्कारतक दैहिक संस्कारोंका विधान मिलता है। आश्वलायनगृह्यसूत्रमें १२, याज्ञवल्क्यस्मृतिमें १२, पारस्कर, बोधायन और वाराहगृह्यसूत्रोंमें १३-१३ एवं मनुस्मृतिमें १३ संस्कारोंका उल्लेख है, परंतु अधिकांश स्मृतियोंमें १६ संस्कारोंका उल्लेख प्राप्त होता है।

१६ संस्कारोंको पाँच भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—१. गार्भिक संस्कार, २. शैशव संस्कार, ३. शैक्षणिक संस्कार, ४. आश्रमिक संस्कार और ५. प्रयाणसंस्कार। इनमेंसे गार्भिक संस्कार तीन हैं—गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन, जो माता-पिताद्वारा सम्पादित होते हैं। शैशव संस्कार छः हैं—जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म और कर्णवेध, जो बालावस्थामें माता-पिताके द्वारा किये जाते हैं। शैक्षणिक संस्कार तीन हैं—उपनयन, वेदारम्भ और समावर्तन, जो आचार्यद्वारा सम्पन्न कराये जाते हैं। आश्रमिक संस्कार तीन हैं—विवाह, वानप्रस्थ और संन्यास, जो स्वयं व्यक्तिद्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। प्रयाणसंस्कार केवल एक ही है—अन्त्येष्टि, जो मृत्युके पश्चात् पुत्रादिके द्वारा किया जाता है।

१. गर्भाधानसंस्कार

'गर्भस्याऽऽधानं वीर्यस्थापनं येन कर्मणा क्रियते तद् गर्भाधानम्।' जिस क्रियाके द्वारा पुरुष स्त्रीकें गर्भाशयमें अपना वीर्य स्थापित करता है, उसे गर्भाधानसंस्कार कहा जाता है। ऐसा पारस्करीय, गोभिलीय तथा शौनकीय गृह्यसूत्रोंमें कहा गया है। सुश्रुतसंहितामें लिखा है कि गर्भाधानके समय स्त्रीकी अवस्था १६ वर्षसे कम और पुरुषकी अवस्था २५ वर्षसे कम होनेसे गर्भमें विकार उत्पन्न हो जाता है—

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते॥
जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥

इससे तात्पर्य यह है कि २५ वर्षसे कम अवस्थावाले पुरुषको १६ वर्षसे कम अवस्थावाली बालिकामें गर्भाधान नहीं करना चाहिये।

२. पुंसवनसंस्कार

'पुमान् प्रसूयते येन कर्मणा तत्पुंसवनम्।' जिस कर्मसे पुमान् (पुत्र) उत्पन्न किया जाता है, उसे पुंसवन-संस्कार कहा जाता है। आचार्य शौनकने पुंसवनके विषयमें लिखा है—

व्यक्ते गर्भे द्वितीये तु मासे पुंसवनं भवेत्।
गर्भेऽव्यक्ते तृतीये च चतुर्थे मासि वा भवेत्॥

यह पुंसवनसंस्कार गर्भके व्यक्त होनेपर तो द्वितीय मासमें और गर्भके अव्यक्त रहनेसे तीसरे अथवा चौथे महीनेमें किया जाता है। यह संस्कार पुत्रप्राप्तिपरक है।

३. सीमन्तोन्नयनसंस्कार

'सीमन्त उन्नीयते यस्मिन् कर्मणि तत्सीमन्तोन्नयनम्।' जिस कर्ममें केशोंको उठाया जाता है, उसे सीमन्तोन्नयनसंस्कार कहा जाता है। इस संस्कारमें गर्भवती स्त्रीके केशोंको उठानेका क्रियाविधान है। आश्वलायनगृह्यसूत्रमें लिखा है कि यह संस्कार गर्भधारणके चतुर्थमासमें किया जाता है— **'चतुर्थे गर्भमासे सीमन्तोन्नयनम्।'**

पारस्करगृह्यसूत्रमें इस संस्कारका समय गर्भधारणके पश्चात् षष्ठ अथवा अष्टम मास माना गया है। इस संस्कारमें पति अपने हाथसे पत्नीके केशोंमें तैल डालकर, उन्हें कंघेसे काढ़कर सीमन्त (केशवेश—जूड़ा)-को ऊँचा करता है और उसे बाँधता है। अतः इसे सीमन्तोन्नयन कहते हैं।

४. जातकर्मसंस्कार

'यस्य जन्मनि मङ्गलं क्रियते तज्जातकर्म।' जिस संस्कारमें बालकके जन्मपर मङ्गल कामना की जाती है, उसे जातकर्मसंस्कार कहते हैं। उत्पन्न शिशुके शरीरका जरायु पृथक्कर उसको कोमल वस्त्रसे पोंछकर पिताकी गोदमें दिया जाता है। मधुसे शिशुकी जिह्वापर अङ्गुलिसे **'ॐ'** लिखा जाता है और उसके कानमें **'वेदोऽसि'** कहा जाता है और शिशुको शतायु होनेका आशीर्वाद दिया जाता है।

५. नामकरणसंस्कार

शतपथब्राह्मणमें शिशुके नामकरणके विषयमें सङ्केत मिलता है—**'तस्मात्पुत्रस्य जातस्य नाम कुर्यात्।'** गोभिल तथा शौनक गृह्यसूत्रके अनुसार उत्पन्न शिशुका जन्मदिनसे १० दिनोंको छोड़कर ११वें दिन नाम रखना चाहिये। नाम समस्त लौकिक व्यवहारोंका और व्यक्तिके भाग्योदयका हेतु है। व्यक्ति नामके आधारपर ही कीर्ति प्राप्त करता है। अतः देवगुरु बृहस्पतिने नामकरणको प्रशस्त संस्कार बताते हुए कहा है—

नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः
शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः।
नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्य-
स्ततः प्रशस्तं खलु नामकर्म॥

(वीरमित्रोदय-संस्कारप्रकाश)

६. निष्क्रमणसंस्कार

उत्पन्न शिशुको सर्वप्रथम गृहसे बाहर निकालनेकी क्रियाको निष्क्रमण-संस्कार कहा जाता है। पारस्करगृह्यसूत्रमें लिखा है कि यह संस्कार चतुर्थ मासमें किया जाता है—

चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति।
बहिर्निष्क्रमणञ्चैव तस्य कुर्याच्छिशोः शुभम्॥

इस संस्कारमें शिशुको सूर्यदर्शन कराया जाता है। इस संस्कारका उद्देश्य शिशुका शारीरिक विकास, शुद्ध वायुसेवन तथा सृष्टिका अवलोकन है।

७. अन्नप्राशनसंस्कार

षष्ठ मासमें शिशुके लिये अन्नप्राशनका विधान है। जैसा कि आश्वलायनगृह्यसूत्रमें लिखा है—**'षष्ठे मास्यन्नप्राशनम्।'** इसके अनुसार शिशुको पायसलेह (खीर)-का प्राशन कराया जाता है। लौगाक्षिके अनुसार—

'षष्ठेऽन्नप्राशनमजातेषु दन्तेषु जातेषु वा।'

चाहे बच्चेके दाँत निकलें या न निकलें, उसे छठे महीनेसे शरीरवृद्धिके लिये खीर, शहद आदि चटाया जाता है। इसे अन्नप्राशनसंस्कार कहा जाता है।

८. चूडाकर्मसंस्कार

चूडाकर्मको केशच्छेदन अथवा मुण्डनसंस्कार भी कहा जाता है। शिशुका मुण्डन प्रथम वर्षमें अथवा तृतीय वर्षमें करानेका विधान है। जैसा मनुस्मृतिमें कहा गया है—

चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्॥

इसके अनुसार प्रथम या तृतीय वर्षमें शिशुका मुण्डन करानेके बाद उसके सिरपर चूडा—शिखा रख दी जाती है। अतः इसे चूडाकर्मसंस्कार कहते हैं।

९. कर्णवेधसंस्कार

कर्णवेधको कर्णच्छेदनसंस्कार भी कहा जाता है।

अनेक रोगोंसे रक्षाके लिये और आभूषण पहननेके लिये कर्णवेधनका विधान है। जैसा कि सुश्रुतसंहितामें कहा गया है—

'**रक्षाभूषणनिमित्तं बालस्य कर्णौ विध्येते।**'

आश्वलायनगृह्यसूत्रके अनुसार शिशुका कर्णवेध तृतीय या पञ्चम वर्षमें किया जाता है—

'**कर्णवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमे वा।**'

१०. उपनयनसंस्कार

उपनयनसंस्कारको यज्ञोपवीतसंस्कार भी कहा जाता है। उपनयनका अर्थ है—पासमें ले जाना। जिस बालकका उपनयन हो जाता है, उसे वेदोंके पास ले जाया जाता है अर्थात् उसे वेदाध्ययनका अधिकार मिल जाता है। ब्राह्मणका ८वें वर्ष, क्षत्रियका ११वें वर्ष और वैश्यका १२वें वर्षमें उपनयन करना चाहिये। जैसा कि आश्वलायनगृह्यसूत्रमें कहा गया है—'**अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्। एकादशे क्षत्रियम्। द्वादशे वैश्यम्॥**'

यदि उक्त समयमें उपनयन नहीं हो पाता है तो ब्राह्मणका १६वें वर्ष, क्षत्रियका २२वें वर्ष और वैश्यका २४वें वर्षतक उपनयन अवश्य ही हो जाना चाहिये। इस अवधिके बाद वे सावित्रीपतित हो जाते हैं। जैसा कि कहा गया है—'**आषोडशाद् ब्राह्मणस्याऽनतीतः कालः। आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य। आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य। अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति।**'

ब्राह्मणका वसन्त, क्षत्रियका ग्रीष्म और वैश्यका शरद् ऋतुमें उपनयन होना चाहिये। जैसा कि शतपथब्राह्मणमें कहा गया है—'**वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत्। ग्रीष्मे राजन्यम्। शरदि वैश्यम्।**'

११. वेदारम्भसंस्कार

'**उपनयनानन्तरमेव वेदारम्भः क्रियते।**' इस कथनके अनुसार यज्ञोपवीतके बाद ही आचार्य ब्रह्मचारीको गायत्रीमन्त्रकी दीक्षाके साथ वेदाध्ययन प्रारम्भ करा देता है। इसे ही वेदारम्भसंस्कार कहते हैं।

१२. समावर्तनसंस्कार

'**तत्र समावर्तनं नाम वेदाध्ययनानन्तरं गुरुकुलात्स्वगृहागमनम्।**' वीरमित्रोदयग्रन्थमें लिखित इस उक्तिके अनुसार ब्रह्मचारी विद्याध्ययन पूर्ण होनेके पश्चात् गुरुकी आज्ञा लेकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके लिये जब अपने माता-पिताके पास लौटाना चाहता है, तब यह समावर्तनसंस्कार किया जाता है। इस संस्कारको दीक्षान्तसंस्कार भी कहा जाता है।

१३. विवाहसंस्कार

'**पुत्रोत्पत्त्या वंशवृद्धये यः संस्कारः क्रियते, स विवाहसंस्कारो गार्हपत्यसंस्कारो वा।**' इसके अनुसार व्यक्तिकी उच्छृङ्खल तथा स्वच्छन्द प्रवृत्तिको रोकने और पुत्रोत्पत्तिद्वारा वंशरक्षाहेतु इस संस्कारका विधान किया गया है। इस विवाहसंस्कारको गार्हपत्यसंस्कार भी कहा जाता है। कन्याके माता-पिताद्वारा कन्यादान किया जाना, वरद्वारा वधूका हाथ पकड़कर उसे अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकृति देना, पुरोहितद्वारा अग्निके समक्ष वैदिक मन्त्रोच्चारणके साथ वर-वधूको सप्तपदी कराना इस संस्कारकी मुख्य क्रियाएँ हैं। वरद्वारा वधूका हाथ पकड़नेसे इसे पाणिग्रहणसंस्कार भी कहते हैं। यह संस्कार गर्भाधानादि संस्कारोंका कारण होनेसे प्रधान संस्कार है।

१४. वानप्रस्थसंस्कार

'**गार्हस्थ्यपालनानन्तरं वानप्रस्थसंस्कारः।**' इसके अनुसार व्यक्तिके गृहस्थाश्रम-धर्मके पालनके अनन्तर पुत्रको गृहभार सौंपकर वानप्रस्थाश्रममें प्रवेशको वानप्रस्थसंस्कार कहा जाता है। जो वानप्रस्थ-आश्रममें शान्तिके साथ वनमें भिक्षाटन करते हुए परमेश्वरकी भक्ति करते हैं, वे पापरहित होकर अमर परमात्माको प्राप्त करते हैं। जैसा कि मुण्डकोपनिषद् (१।२।११)-में वानप्रस्थके महत्त्वपर प्रकाश डाला गया है—

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये
शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति
यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥

१५. संन्याससंस्कार

'**ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेत्, गृही भूत्वा वनी भवेत्, वनी भूत्वा प्रव्रजेत्।**' शतपथब्राह्मणकी इस उक्तिके अनुसार मोह आदि त्यागकर विरक्त हो जनजीवनके उपकारार्थ पृथ्वीपर भ्रमण करना ही संन्याससंस्कार है। इस संस्कारमें केशमुण्डन, काषाय वस्त्रधारण, हाथमें दण्ड और भिक्षापात्र ग्रहण करना मुख्य क्रियाएँ हैं।

१६. अन्त्येष्टिसंस्कार

मृत्युके पश्चात् मनुष्यके शरीरका दाहकर्म ही अन्त्येष्टिसंस्कार है। इस संस्कारको नरमेध, पुरुषमेध, नरयाग, पुरुषयाग और अन्तिम संस्कार भी कहा जाता है। तैत्तिरीय आरण्यकके षष्ठ अध्यायमें इस संस्कारका विधान बताया गया है जिसमें मृतकको स्नान कराके, चन्दन आदिका लेप करके, नवीन वस्त्र पहनाकर, चन्दनकी चितापर रखकर, कपूर डालकर अग्नि प्रज्वलितकर वैदिक मन्त्रोच्चारणके साथ चितामें घृत, तिल आदिकी आहुतियाँ देनेका विधान है। यह संस्कार पुत्रादिके द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

इस प्रकार मनुष्यके जीवनमें संस्कार बहुत उपयोगी और अत्यन्त आवश्यक हैं। संस्कारयुक्त मनुष्य सुसंस्कृत, सभ्य, सुशील तथा सदाचारी होता है। मानवमें श्रेष्ठ गुणोंका विकास, व्यक्तित्वनिर्माण और उसे अनुशासित जीवन प्रदान करना संस्कारोंका प्रमुख प्रयोजन है।



दुःख देनेवाले परिवारजनको प्रेम देनेसे प्रभुकी प्राप्ति

(डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

जीवनका लक्ष्य—भगवान्‌की असीम कृपासे आपको मानवजीवन मिला है। यह जीवन अनमोल एवं देवदुर्लभ है। इस जीवनका एकमात्र लक्ष्य है—परमात्माको प्राप्त कर लेना। आप परमात्माके अंश हैं, परमात्मा आपको प्राप्त हैं। उनकी प्राप्तिका अनुभव न होनेका कारण है चिन्ता। चिन्ताका मूल कारण है—चाह। यदि आप किसी भी उपायसे चाहको मिटा लें तो आपकी चिन्ता अपने-आप मिट जायगी। चिन्ता मिटते ही आपको प्राप्त परमात्माकी प्राप्तिका अनुभव हो जायगा। संतवाणीमें यही बात बतायी गयी है—

चाह गयी चिन्ता मिटी मनवा बेपरवाह।
जिसको कछु न चाहिये वह शाहनपति शाह॥

भाव यह है—चाहका त्याग करते ही चिन्ता मिट जाती है, मन एकदम शान्त तथा प्रसन्न रहता है। जो किसीसे कुछ नहीं चाहता है, वह वास्तवमें राजाओंका राजा और महाराजाओंका महाराजा है।

यदि आप और परमात्माके बीचमें आपकी चाह नहीं होती तो आपको अनुभव हो जाता कि मैं तो परमात्माका अंश ही हूँ।

आरज़ू ने मुझको बंदा कर दिया।
वरना हम ख़ुदा थे गर न होती आरज़ू॥

भाव यह है—चाहने मुझको गुलाम (दुःखी, भयभीत, चिन्तित) बना दिया। यदि चाह नहीं होती तो हम भगवान् ही थे।

कैसे मिटती है चिन्ता—विचार कीजिये—चिन्ता कब होती है? उत्तर है—संकट या विपत्ति या प्रतिकूलतामें। वह प्रतिकूलता कहाँ आती है? जब आपको चिन्ता होती है। इसका उत्तर है—आपके परिवारमें। परिवारका अर्थ तीन चीजोंसे है—आपका शरीर, आपके निकट सम्बन्धी या स्वजन। जैसे—आपके पति, पत्नी, पुत्र, पुत्रियाँ, माता-पिता, भाई-बहन, दामाद आदि, आपका निजी सामान और सम्पत्ति। परिवारके अलावा अन्यत्र आनेवाली प्रतिकूलतामें आपको करुणा तो आ सकती है, पर चिन्ता नहीं हो सकती। यदि आप अपने परिवारमें भलीभाँति रहना सीख जायँ तो आपकी चिन्ता मिट जायगी।

कैसे रहें परिवारमें—परिवारमें रहनेका एक विशेष तरीका है। वह तरीका है—प्रेम दो या सेवा करो या काम आ जाओ, बदलेमें कुछ मत चाहो। श्रीरामचरितमानस (७।३८।४)में भगवान् श्रीरामने भी यही तरीका बताया है—

सबहि मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी॥

अर्थात् जो सबको सम्मान देते हैं, पर स्वयं मानरहित होते हैं। हे भरत! वे प्राणी (संतजन) मेरे प्राणोंके समान हैं।

सम्मान देनेका आशय है—प्रेम देना। अमानीका आशय है—कुछ न चाहना।

श्रीमद्भगवद्गीता (२। ४७)-में भगवान् श्रीकृष्णने भी यही बात बतायी है—

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन॥'

भाव यह है—तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है, उसके फलमें कभी नहीं।

यहाँ 'कर्म' का आशय है सेवा करना या प्रेम देना। फलमें कभी नहींका अर्थ है कुछ नहीं चाहना।

क्या है प्रेम देनेका आशय—प्रेम देनेके दो अर्थ हैं—पहला, परिवारके प्रति अपने चिन्तनको सही बना लेना। दूसरा, परिवारके प्रति अपने व्यवहारको सही बना लेना। व्यवहार सही बनानेका अर्थ है—अपने परिवारके सभी सदस्यों—पति, पत्नी, सन्तान, सास, बहू, ननद, भाभी, देवरानी, जेठानी, भाई, बहन, माता, पिता आदिको भरपूर प्रेम देना, उनकी सेवा करना। प्रेम कैसे दें। इसका उत्तर है—परिवारजनोंको प्रसन्नता देनेकी भावना रखना, मनमें उनका भला या हित सोचना और मर्यादाको ध्यानमें रखकर उनको अपनी शक्ति एवं सामर्थ्यके अनुसार प्रसन्नता देना, उनका भला करना। प्रसन्नता देनेके बदलेमें इस प्रकारकी कोई इच्छा न रखना कि वे भी मुझे प्रसन्नता दें या मेरे साथ अच्छा व्यवहार करें या खराब व्यवहार न करें या मेरी इच्छाके अनुसार रहें, मेरी बात मानें या मुझे कुछ दें आदि। श्रीरामचरितमानस (३। ३३)-में भगवान् श्रीरामने प्रेम या सेवा की अपार महिमा बतायी है—

मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव॥

भाव यह है—(श्रीराम कहते हैं—) मन, वचन और कर्मसे कपट छोड़कर जो भूदेव—ब्राह्मणोंकी सेवा करता है, मुझ समेत ब्रह्मा, शिव और सब देवता उसके वशमें हो जाते हैं।

यहाँ कपट छोड़नेका अर्थ है कुछ न चाहना।

अपने मनमें हितभावना रखनेकी भी अपार महिमा बतायी गयी है—

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

(रा०च०मा० ३। ३१। ९)

अर्थात् (भगवान् श्रीराम कहते हैं) जिनके मनमें दूसरेका हित बसता है (समाया रहता है), उनके लिये जगत्‌में कुछ भी (कोई भी गति) दुर्लभ नहीं है।

दो प्रकारका व्यवहार—परिवारके सदस्य आपके साथ दो प्रकारका व्यवहार करेंगे—अच्छा या अनुकूल व्यवहार और खराब या प्रतिकूल व्यवहार। अच्छे व्यवहारका अर्थ है—सुख देना। खराब व्यवहारका अर्थ है—दुःख देना। वे आपके साथ अच्छा व्यवहार करें अथवा खराब व्यवहार करें, आपको उन्हें प्रेम ही देना है।

अच्छा व्यवहार करनेपर प्रेम देना—जब परिवारजन आपके साथ अच्छा व्यवहार करें अर्थात् आपको सुख, सुविधा, आदर, सम्मान, प्रेम, प्रसन्नता दें, आपकी सेवा करें, आपकी आज्ञाका पालन करें, आपकी मदद करें, तब आप उन्हें इस प्रकार प्रेम दें—

(क) प्रणाम करें—परिवारके प्रत्येक सदस्यको अपने भगवान्‌का मेहमान मानकर इस प्रकार प्रणाम करें—हे भगवन्! पुत्र आपका मेहमान है, आपके इस मेहमानको मेरा प्रणाम। इससे भी अच्छी और उच्च कोटिकी साधना यह है कि आप परिवारके प्रत्येक सदस्यको भगवान्‌का साक्षात् स्वरूप मानकर इस प्रकार प्रणाम करें—हे भगवन्! आप स्वयं मेरे पारिवारिक सदस्य बनकर पधारे हैं, आपके इन रूपोंको मेरा प्रणाम। मनमें यह भावना रखें—मुझे प्रेम देनेका अवसर प्रदान करनेके लिये मेरे प्रभु ही मेरे परिवारजन बनकर पधारे हैं। प्रेम देनेसे वे प्रकट हो जायँगे, दिख जायँगे। श्रीरामचरितमानस (१। १८५। ५)-में भगवान् शंकरकी वाणी है—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

भाव यह है—(भगवान् शङ्कर कहते हैं—) मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान् सब जगह समान रूपसे व्यापक हैं, प्रेमसे वे प्रकट हो जाते हैं।

(ख) अधिक अच्छा व्यवहार करें—परिवारजन आपके साथ जितना अच्छा व्यवहार करें, आप उनके साथ उससे कई गुना ज्यादा अच्छा व्यवहार कीजिये, कई गुना ज्यादा सुख, सुविधा और सम्मान दीजिये।

(ग) कुछ न चाहें—अच्छा व्यवहार करनेके बदलेमें आप उनसे कुछ न चाहें अर्थात् ऐसा न सोचें कि वे मेरे साथ अच्छा ही व्यवहार करें, मेरी आज्ञा मानें, मेरे

अनुशासनमें रहें, मेरे साथ खराब व्यवहार न करें, आदि-आदि। यदि आप उनसे किसी भी प्रकारकी चाह रखेंगे और वे उसे पूरी नहीं करेंगे तो आपको उनपर क्रोध आयेगा, फिर आप उनको प्रेम नहीं दे पायेंगे। आप उनके प्रति हितभावना रख सकते हैं। हितभावना पूरी न होनेपर करुणा आती है, चाह पूरी न होनेपर क्रोध आता है।

खराब व्यवहार करनेपर प्रेम देना—जब परिवारजन आपके साथ खराब व्यवहार करें अर्थात् आपको दुःख दें, तब भी आपको उन्हें प्रेम ही देना है। आपके सामने दो रास्ते हैं—पहला, उनको प्रेम देना और दूसरा, उनके साथ लड़ाई-झगड़ा करना। यदि आप उनके साथ लड़ाई करेंगे तो आप दुःख, चिन्ता, भय, मानसिक तनावसे ग्रसित हो जायँगे, आपके परिवारमें भयंकर अशान्ति पैदा हो जायगी, आप क्रोध तथा द्वेषकी आगमें जल जायँगे, आपका जीवन दुःखमय बन जायगा, मृत्युके समय आपको भीषण दुःख होगा, मृत्युके बाद भी आपकी सद्‌गति नहीं होगी। इसलिये आपको उन्हें प्रेम ही देना चाहिये। उनको प्रेम देनेकी विधि इस प्रकार है—

(क) प्रणाम कीजिये—उनको भगवान्‌के मेहमान या भगवान्‌के स्वरूप मानकर ऊपर लिखे गये तरीकेसे प्रणाम कीजिये।

(ख) क्षमा माँगिये—यदि आपको ऐसा लगता है कि आपकी किसी भूलके कारण वह आपके साथमें खराब व्यवहार कर रहा है तो आप उससे क्षमा माँग लीजिये और उस भूलको भविष्यमें न दोहरानेका आश्वासन दे दीजिये। यदि आपकी भूलसे उसको आर्थिक नुकसान हुआ हो तो उसकी पूर्ति कर दीजिये।

(ग) खराब व्यवहारके विभिन्न रूप—आपके परिवारजन आपके साथमें अनेक प्रकारसे खराब व्यवहार कर सकते हैं। किस खराब व्यवहारमें उनको किस प्रकारसे प्रेम देना है—इसका विवेचन इस प्रकार है—

(१) निन्दा, अपमान, बदनामी—यदि आपके परिवारका कोई सदस्य आपकी निन्दा, आलोचना, अपमान, अनादर, निरादर, तिरस्कार, चुगली, बदनामी, बहिष्कार, अवहेलनाके रूपमें आपके साथ खराब व्यवहार करे तो आप बदलेमें उसकी निन्दा, आलोचना, अपमान, अनादर, निरादर, तिरस्कार, चुगली, बदनामी आदि न करें। यदि आप ऐसा करेंगे तो आप अशान्त हो जायँगे। किसी संत या साधकको समस्याके समाधानके लिये वास्तविक स्थिति बतलाना निन्दा नहीं है।

(२) नुकसानका प्रयास करना—यदि वह आपके शरीर, स्वजन एवं सम्पत्तिको किसी भी प्रकारका नुकसान पहुँचानेका प्रयास करे तो आप इनकी सुरक्षाकी पूरी व्यवस्था करें। लेकिन बदलेमें उसको किसी भी प्रकारका नुकसान करनेकी भावना न रखें।

(३) नुकसान कर देना—सुरक्षाकी पूरी व्यवस्था कर लेनेके बाद भी यदि वह आपका नुकसान कर दे तो आप उसका बदलेमें नुकसान न करें, उसपर भीतर अथवा बाहरी स्तरपर क्रोध न करें, उससे नाराज न होवें, अपनी तरफसे उसके साथ बोल-चाल एवं आने-जानेके व्यवहारको बन्द न करें। यदि वह स्वयं आपको कह दे कि आपके साथ बात करने और आपके घर आने-जानेसे मुझे बड़ा भारी दुःख होता है, कृपया आप ऐसा न करें, तो आप बोल-चाल एवं आना-जाना बन्द कर सकते हैं। अपने मनमें उसको खराब न समझें, उसका बुरा न सोचें, उसका बुरा न करें।

(४) करुणा व प्रार्थना—उसके प्रति अपने हृदयमें करुणाकी भावना रखें। आपमें करुणाकी भावना रखनेकी शक्ति तब आयेगी जब आप यह सच्ची बात भलीभाँति मान लेंगे कि किसी भी भूल, दोष अथवा बुराईका सम्पूर्ण नुकसान उसी व्यक्तिको होता है जो वह भूल, दोष एवं बुराई करता है। उसकी बुराईसे परिवारजनोंको कणमात्र भी नुकसान नहीं होता है। जब आपका हृदय करुणासे भर जाय, तब आप उसकी भूलसुधारके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करें।

(५) सद्भावना रखें, समझायें, बातचीत करें—आप अपने मनमें उसके प्रति लेशमात्र भी क्रोधकी भावना न रखें। उसके प्रति सद्भावना व हितभावना रखें। ऐसा सोचें कि वह प्रसन्न रहे, उसका भला हो। उसके साथ बातचीत करें, उसकी बातको शान्तिसे सुनें, अपनी बात शान्तिसे प्रेमभरी भाषामें कहें। बातचीत करते समय उसके साथ आदरका व्यवहार करें।

(६) अच्छा व्यवहार करें—आप उसके साथ

अच्छा व सामान्य व्यवहार ही करें। उसके साथ बातचीत जारी रखें, समय-समयपर मिलते रहें, कुशल-क्षेम पूछते रहें। उसके साथ वैसा ही अच्छा व्यवहार करते रहें, जैसा आप तब करते जब वह बहुत अच्छा होता।

(७) दण्ड दीजिये—इतना सब कुछ करनेके बाद भी यदि वह प्रतिकूल व्यवहार करना बन्द न करे तो आप उसे समुचित दण्ड भी दे सकते हैं। दण्ड देते समय आपके हृदयमें उसके प्रति लेशमात्र भी क्रोध व बदला लेनेकी भावना नहीं होनी चाहिये। आपके हृदयमें विशुद्ध करुणा, उसके सुधार व हितकी भावना होनी चाहिये। भगवान् श्रीरामने रावणको हितभावनासे मृत्युदण्ड दिया। रावण व उसकी पत्नी मन्दोदरीके हृदयमें भगवान्की हितभावना पहुँच गयी। मन्दोदरीने भगवान्की स्तुति करते हुए कहा—

आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं।
तुम्हहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं॥
अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन।
जोगि बृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान॥

(रा०च०मा० ६।१०४ छंद, दोहा १०४)

भाव यह है—तुम्हारा यह शरीर जन्मसे ही दूसरोंसे द्रोह करनेमें तत्पर तथा पापसमूहमय रहा। इतनेपर भी जिन निर्विकार ब्रह्म श्रीरामजीने तुमको अपना धाम दिया, उनको मैं नमस्कार करती हूँ। अहह! नाथ! श्रीरघुनाथजीके समान कृपाका समुद्र दूसरा कोई नहीं है, उन भगवान्ने तुमको वह गति दी जो योगीसमाजको भी दुर्लभ है।

(८) सुख छोड़ दें, दुःख झेल लें—परिवारजन कितना ही प्रतिकूल व्यवहार करें, आप भीतर-बाहर एकदम शान्त व प्रसन्न रहें। आपके मनमें उनके प्रति लेशमात्र भी क्रोधका भाव न आये, आपके बाह्य व्यवहारमें भी क्रोध न झलके। आवश्यक हो तो आप उसके हितके लिये बाहरी स्तरपर क्रोधका अभिनय कर सकते हैं। उसके प्रति हितभावना रखें। जरूरत पड़नेपर उसकी प्रसन्नताके लिये प्रसन्नतापूर्वक अपना सुख छोड़ दें और दुःख झेलना पड़े तो प्रसन्नतापूर्वक दुःख झेल लें।

प्रभुके दर्शन—इस प्रकार सुख एवं दुःख देनेवाले परिवारजनोंको प्रभुका स्वरूप मानकर प्रेम देनेसे उन्हींमें अपने प्रभुके दर्शन होंगे।

ताकत कैसे आयेगी—परमात्माने सभी भाई-बहनोंको प्रेम-जैसा दिव्य, चिन्मय, अलौकिक तत्त्व दिया है। आपके हृदयमें प्रेमका विशाल समुद्र है। प्रभुप्रदत्त प्रेममें कभी भी कणमात्रकी भी कमी नहीं होती। अन्तिम श्वासतक प्रेम यथावत् रहता है। आपमें प्रेम देनेकी अपार शक्ति भी है। आप प्रेम देना जानते भी हैं। परमात्माने आपका निर्माण प्रेमतत्त्वसे किया है। केवल एक भूलके कारण आप प्रेम नहीं दे पाते हैं। उस भूलका नाम है—क्रोध। यदि आप क्रोधको जड़मूलसे मिटा लें तो आपमें प्रेम देनेकी ताकत स्वतः आ जायगी।

सारांश—दुःख देनेवाले परिवारजनको प्रेम देनेके सम्बन्धमें दो खास बातें हैं—१-उसको बदलेमें दुःख न देना, उसके साथ लड़ाई न करना २-उसको प्रेम देना। दुःख न देने व लड़ाई न करनेका अर्थ है—मनमें उसको बुरा न समझना, मनमें क्रोधकी भावना न रखना, उसका बुरा न सोचना, उससे नाराज न होना, उसके साथ बोलचाल बन्द न करना, उसके घर आना-जाना बन्द न करना, उसकी निन्दा, आलोचना, अपमान, तिरस्कार न करना, उसका बुरा न करना, उसको हानि न पहुँचाना। आप अपनी सुरक्षाके लिये उचित कार्यवाही कर सकते हैं। प्रेम देनेका अर्थ है—उसके प्रति मनमें करुणाकी भावना रखना, उसका हित सोचना, उसकी भूल मिटाने व उसको अच्छा बनानेके लिये निःस्वार्थ भावसे भगवान्से प्रार्थना, यथाशक्ति उसका हित करना।

क्रोध न रहे तो प्रेम देनेकी शक्ति स्वतः आ जाती है।



हरिरेव जगज्जगदेव हरिर्हरितो जगतो नहि भिन्नतनुः।
इति यस्य मतिः परमार्थगतिः स नरो भवसागरमुत्तरति॥

हरि ही जगत् हैं, जगत् ही हरि हैं, हरि और जगत्में किञ्चिन्मात्र भी भेद नहीं है। जिसकी ऐसी मति है, उसीकी परमार्थमें गति है, वह पुरुष संसार-सागरको तर जाता है।



गोमये वसते लक्ष्मीः—एक वैज्ञानिक सत्य

(श्रीशिवेन्द्रकुमारजी पांडे)

[गताङ्क पृ०-सं० ९१५ से आगे]

प्रकृतिके वरदानस्वरूप भारतके पाँच उत्तरी-पूर्वी राज्यों (अरुणाचलप्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम तथा नागालैण्ड)-की पहचान पचीस विशिष्ट महाजैवविविधतातप्त-प्रदेशोंके अन्तर्गत हुई है, इसलिये इन राज्योंके गोधनमें कुछ विशिष्ट गुण विद्यमान हैं। यह बात स्पष्ट है कि जिस किसी भारतीय प्रान्तमें जंगल मूलभूत अवस्थामें विद्यमान हैं अथवा गोचरभूमि सुरक्षित है, वहाँके गोधनमें विशिष्ट प्रकारके जैवसंवर्धक गुण अवश्य विद्यमान रहते हैं। भारतीय वैज्ञानिकोंको इस ओर गम्भीरतासे ध्यान देना चाहिये; क्योंकि भारतीय गोधन विश्वमें उभरते जैवप्रौद्योगिकीके विकासमें उच्चस्तरीय योगदानकी क्षमता रखता है।

पिछले दो दशकोंसे भारतमें सक्रिय कई स्वयंसेवी एवं सरकारी संस्थाओंने इन प्राचीन जैवपद्धतियोंको कृषि तथा औषधक्षेत्रमें अपनाते हुए सफल आर्थिक समृद्धि प्राप्त की है। कई निजी एवं सरकारी अनुसन्धान-केन्द्रोंमें कार्यरत शोधकर्ता **'गोमये वसते लक्ष्मीः'** की वैज्ञानिक सत्यताको आधुनिक रूपमें प्रमाणित करते हुए देश-विदेशमें उनका पेटेण्ट भी प्राप्त करने लगे हैं।

भारत एक बड़ा चाय-निर्यातक देश है। यूरोपके व्यवसायी अब उन्हीं भारतीय चाय-बागानोंसे माल खरीदनेको प्राथमिकता देने लगे हैं, जहाँ गोबर और गोमूत्रका उपयोग उर्वरक एवं कीट-नियन्त्रकके रूपमें किया जाता है। इस प्रकारसे उगायी गयी जैव-चायका बाजारमूल्य भी अधिक होता है। वैदिक ज्ञानके अन्तर्गत हम सभी गोबरको उर्वरकके रूपमें उपयोग करना जानते हैं, परंतु इस प्राचीन ज्ञानसे अधिकतर भारतीय परिचित नहीं हैं कि गोमूत्र एक सशक्त जैव उर्वरक होनेके साथ-साथ एक शक्तिशाली कीट-नियन्त्रक भी है।

केन्द्रीय औषधीय एवं सुगन्ध-पौध-संस्थान, लखनऊ और गोविज्ञान-अनुसंधान-केन्द्र, नागपुर के वैज्ञानिकोंने सम्मिलित प्रयासद्वारा गोमूत्रपर आधारित एक आस्रुत (डिस्टिल्ड)-का वर्ष २००२ में अमेरिकी पेटेण्ट प्राप्त किया है और इसे 'कामधेनु-अर्क' नाम दिया है।

इस अर्कके संयोगसे निर्मित प्रतिजैविक (एण्टीबायोटिक) दवाओंमें सूक्ष्म जैविक-विरोधी (एण्टी-माइक्रोबियल) क्षमतामें पाँच-से-सात गुना वृद्धि होगी। अर्थात् प्रतिजैविक दवाओंकी कम खुराकसे ही स्वास्थ्यलाभ मिलने लगेगा और उत्तरप्रभावोंमें भी कमी होगी।

नागपुर-संस्थानने इस शोधके आधारपर 'कामधेनुमार्का' नामका उपयोग करते हुए कई पंचगव्य एवं जड़ी-बूटियोंपर आधारित आयुर्वेदिक दवाओंका निर्माण भी आरम्भ कर दिया है।

अब वैज्ञानिक रूपमें विदित हो चुका है कि गोमूत्रमें रोगाणुनाशी, रोगनिरोधक एवं जैवप्रजननके उच्चस्तरीय गुण-धर्म प्राकृतिक रूपसे विद्यमान हैं, इसलिये वह वायुमण्डलकी शुद्धता एवं कृषि-भूमिकी उर्वरकतावृद्धि करनेमें सक्षम है। यह भी देखनेमें आया है कि गोमूत्रमिश्रणसे निर्मित जैवखादका उपयोग साधारण जैवखादसे कहीं अधिक कृषि-उत्पादनमें वृद्धि करता है।

हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें पेटकी बीमारियोंको उभरनेसे रोकने एवं रोग-उपचारके लिये गोमूत्रको रामबाण औषध कहा गया है। उनमें यह भी कहा गया है कि इसके नियमित सेवनसे कायाकल्प होता है। इस प्राचीन ज्ञानसे प्रेरणा लेकर कई असाध्य रोगोंका सफलतापूर्वक इलाज भी हो रहा है।

पिछले एक दशकसे भारतमें सक्रिय कई स्वयंसेवी-संस्थाओंके प्रयाससे इस उपचारपद्धतिके प्रति जागरूकतामें वृद्धि हुई है। फलस्वरूप मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, छत्तीसगढ़, राजस्थान आदि प्रान्तोंके हजारों नागरिक नियमित रूपसे गोमूत्र-सेवन कर लाभ उठा रहे हैं। अब तो भारतके कई नगरोंमें साइकिलोंके माध्यमसे दूध बाँटनेवाले ग्वालोंके समान गोमूत्र बेचनेवाले भी दिखने लगे हैं।

वर्ष २००६ के प्रारम्भमें उल्लिखित लखनऊ एवं नागपुर-शोधसंस्थानोंके वैज्ञानिकोंने गोमूत्र-नीम-लहसुनके मिश्रणसे बनी जैवखादका अमेरिकी पेटेण्ट प्राप्त कर लिया है। गोमूत्रमिश्रणसे तैयार की गयी इस खादके उपयोगसे

पौधोंमें पोषक तत्त्वोंके संग्रह, फास्फेट, घुलनशीलतावृद्धि, अजैविक कारकोंके प्रति सहनशीलता एवं रोग-प्रतिरोधक क्षमतामें वृद्धि होती है।

आर्थिक दृष्टिसे यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है; क्योंकि इस सशक्त जैव-उर्वरकके निर्माणके लिये आवश्यक तीनों घटक भारतके ग्रामीण क्षेत्रोंमें स्थानीय स्तरपर सर्वत्र उपलब्ध होते हैं।

आजसे लगभग २० वर्षपूर्वकी बात है, कच्छके माण्डवी जिलेमें एक बंजर भूखण्ड (जहाँ घास भी नहीं उगती थी)-को कृषिविकासके लिये चुना गया था। इसका श्रीगणेश गोपालनसे किया गया। आश्चर्य की बात यह कि मात्र तीन वर्षोंके भीतर ही वह बंजर भूमि गोबर एवं गोमूत्रके प्रयोगसे उर्वर बन गयी। इसके पश्चात् स्थानीय रूपमें उपलब्ध जैव-पदार्थों (पागल बबूल, बाजरेकी डंठल, भूसा आदि)-को गोबर-गोमूत्रके साथ मिलाकर कार्बनिक खादका निर्माण आरम्भ किया गया। इस खादके प्रयोगसे पौष्टिक चारा-उत्पादनमें वृद्धिके फलस्वरूप दूध और कृषि-उत्पादन बढ़ने लगा एवं रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकोंकी आवश्यकता ही समाप्त हो गयी।

इसके अलावा वहाँ भू-जलभण्डारोंके पुन:पूरणके लिये परम्परागत प्राचीन भारतीय तरीकोंको इजराइलमें विकसित आधुनिक जलसम्भर-प्रबन्धकौशल तकनीकोंके साथ अपनाया गया। वहाँका भू-जलस्तर जो १०० मीटर गहराईपर चला गया था, उठकर १५-२० मीटर गहराईपर आ गया। साथ ही एक अन्य लाभ भी प्राप्त हुआ कि स्थानीय कुओं एवं नलकूपोंमें पेयजलके सम्पर्कमें आ गये समुद्री खारे पानीकी समस्याका निदान भी निकल आया। अब चूँकि खारा पानी प्राकृतिक रूपमें मीठे-पानीसे भारी होता है, इसलिये भूजल-स्तर ऊँचा उठनेपर खारा पानी स्वत: रूपसे मीठे पानीके नीचे रह गया। इस योजनाको कच्छ-प्रदेशमें बड़े पैमानेपर लागू किया गया है।

गोबर एवं गोमूत्रके एक अन्य प्रयोगसे यह सिद्ध हुआ है कि मानव-मलमूत्र-सफाईके कार्यको पर्यावरण-संगतरूपमें कार्यान्वित करनेके लिये मल-मूत्रके साथ गोबर एवं राक-फास्फेट (प्राकृतिक उर्वरक-खनिज) थोड़े-थोड़े अंतरालमें मिलानेसे इस मिश्रणके फलस्वरूप १५ मिनटोंमें दुर्गन्ध समाप्त होनेके अलावा मच्छर-मक्खी पैदा होनेकी समस्यासे छुटकारा भी हासिल हो जाता है। फिर १५ दिनोंके भीतर सम्पूर्ण मल-मूत्रका कायापलट एक अमूल्य खादमें हो जाता है, जिसे अब 'सोनखाद' के नामसे जाना जाता है। सोनखादका उपयोग करनेपर फसलकी वृद्धि देखनेमें आयी है, परंतु सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य, जो इसके सहयोगसे सफल बनाया जा सका है, वह है परती-भूमिका सुधार।

गव्य-पदार्थोंके सहयोगसे आज भारतीय आयुर्वैदिक औषध एवं उपचारपद्धतिको विश्वस्तरीय मान्यता मिलने लगी है। वर्तमानमें कई भारतीय गोशालाएँ पंचगव्यपर आधारित दवाओंका निर्माण कर भारी आर्थिक लाभ कमाने लगी हैं; क्योंकि गोशालाके रख-रखावके खर्चसे कहीं अधिक धन उन्हें दवाओंकी बिक्रीसे प्राप्त हो जाता है। इन औषधोंको टिकिया, कैपसूल, मलहम, तरल पेय आदि स्वरूपोंमें प्रस्तुत किया जा रहा है। कई निजी संस्थान भी इन दवाओंका निर्माण कर रहे हैं।

पिछले कुछ वर्षोंसे पंचगव्यका उपयोग कर घरेलू उपचारके लिये फिनायल, अन्नसुरक्षा टिकिया, मच्छरनिरोधक क्वायल, धूपबत्ती, बर्तन माँजनेका पाउडर, साबुन, शैम्पू, दंतमंजन, तेल, डिस्टम्पर, फेसपैक (उबटन) आदि भी देशके भीतर निर्माण किये जा रहे हैं। दैनिक उपयोगके इन जैवप्रसाधनोंकी माँग विदेशोंमें भी बढ़ती जा रही है।

स्वदेशी गोधनमें विद्यमान भार-दोहन-क्षमताके अनुरूप बैलचालित ट्रैक्टर/बैट्रीचार्जर/सिंचाई एवं पम्पिंग मशीनका विकास भी भारतमें हो चुका है और इनका व्यावहारिक रूपमें सफलतासे उपयोग भी किया जा रहा है।

यह हर्षका विषय है कि भारतीय विद्वान् अपने प्राचीन ग्रन्थोंमें उपलब्ध नानाप्रकारकी स्थानीय जलवायु-विशिष्ट जैव-प्रौद्योगिकियोंको आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञानके साथ डबजोड़ (डोवटेल) कर उन्हें अधिक उच्च स्तरपर लाभदायक स्वरूप प्रदान करनेमें सफलता प्राप्त कर रहे हैं। अब केवल इन शोधप्रयासोंको गति प्रदान करनेकी आवश्यकता है; क्योंकि भारतमें दूसरी हरित-क्रांतिका प्रमुख स्रोत होगा—जड़ी-बूटी और पंचगव्यके सदुपयोगपर आधारित कृषिकर्म।

इस लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये सभी आधारभूत सुविधाएँ भारतमें उपलब्ध हैं। जैसे—विभिन्न प्रकारके जलवायु-प्रदेशोंमें उपजाऊ भूमिके मध्य फैली जैवविविधता, स्थलाकृतिक परिवेशके अनुरूप जलभण्डार, मानव ऊर्जा, उच्चस्तरीय जैव-प्रजनन, उपचारगुणोंसे भरपूर गोवंश, जैव-प्रौद्योगिकियोंसे भरपूर प्राचीन ज्ञान-भण्डार और आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञानके मध्य विश्वस्तरीय तकनीकी सुविज्ञता। इनका प्रतिबद्धताके साथ सदुपयोग करनेपर भारतको विकसित राष्ट्रके रूपमें उभरनेसे कोई रोक नहीं सकता है। इसके लक्षण भी प्रकट होने लगे हैं—

भारतीय विद्वानोंद्वारा किये गये उल्लिखित वैज्ञानिक परीक्षणोंसे यह ज्ञात होने लगा है कि भारतीय गोधनके पंचगव्यमें विदेशी काऊसे कहीं अधिक मात्रामें जैवसंवर्धन/उपचार-सम्बन्धी क्षमता प्राकृतिक रूपसे स्थापित है। इस ज्ञानसे प्रभावित होकर अमेरिका-जैसा समृद्ध राष्ट्र भी भारतसे जैव वर्मीकम्पोस्ट एवं पेस्टिसाइडके आयातके संदर्भमें प्रयासरत है। एक अनुमानके अनुसार ३५,००० भारतीय गोधनके गोबर-गोमूत्रसे १,६०,००० टन वर्मीकम्पोस्ट और ७०,००० लीटर बायोपेस्टिसाइडका निर्माण एक दिनमें किया जा सकता है। एक भारतीय गोधन औसतन १० किलोग्राम गोबर तथा १७ लीटर गोमूत्रका प्रतिदिन त्याग करता है।

वर्तमानमें उभरते विश्वव्यापार-परिदृश्यमें पेटेण्टोंका बोलबाला स्थापित हो चुका है। इसलिये भारतीय विद्वानोंको अपने शोधकार्यकी गोपनीयता बनाये रखनेकी सतर्कताको प्राथमिकता प्रदान करनी होगी, जबतक कि वे उसका पेटेण्ट नहीं प्राप्त कर लेते। अन्तर्राष्ट्रीय नियमोंके अन्तर्गत भौगोलिक उपलब्धताके अनुसार वेचुर-जैसी सम्पदा एवं प्राचीन भारतीय पद्धतियोंके ऊपर भारतको स्थायी अधिकार प्राप्त हो सकता है। जबकि एक नयी वस्तु-प्रणालीका विकास करनेपर उसके अनुसंधानकर्ताको केवल बीस वर्षोंका पेटेण्ट मिलता है, वह भी जिसमें कोई नवीनता हो, अन्यथा नहीं। इसलिये सभी प्राचीन भारतीय पद्धतियोंका पेटेण्ट प्राप्त करनेमें भारतीय विद्वानोंको उच्चस्तरीय प्राथमिकता देनी चाहिये।

भारतमें ३० प्रतिशत कृषिभूमिके मालिक छोटे-छोटे गरीब किसान हैं, जो अधिकतर अशिक्षित भी हैं। फिर भारतमें ७० प्रतिशत गोधन भी इन्हींकी सम्पत्ति है। इसलिये इन्हें साधारण व्यावहारिक प्रशिक्षण देकर यह अवगत करानेकी आवश्यकता है कि—

(अ)—प्रदूषणविस्तारके मध्य बदलते हुए मौसमके अनुरूप वे अपने-अपने क्षेत्रोंमें वर्षके किस महीनेमें कौन-सा कृषिकर्म अपनायें।

(ब)—वे एक असाधारण एवं आधारभूत जैव-ऊर्जास्रोतके मालिक हैं, अत: वे अपने पालतू-गोधनका इष्टतम सदुपयोग करते हुए किस प्रकार घर बैठे अपनी आर्थिक स्थितिमें सुधार ला सकते हैं।

इसके साथ-साथ इस विषयपर जनसाधारणके मध्य प्रचार-प्रसारकी भी बहुत आवश्यकता है, ताकि हम भारतीय यह समझ सकें कि जैव-प्रौद्योगिकी रूपी कल्पवृक्षकी जड़ है—हमारी स्वदेशी गोमाता। एक वृक्ष बड़ा होकर कितना भी हरा-भरा क्यों न हो जाय, वह हमारे लिये दूरगामी रूपमें तभीतक उपयोगी बना रह सकता है, जबतक उसकी जड़ें स्वस्थ तथा मजबूत रहती हैं। हमारे मध्य इस प्रकारका ज्ञान उभरनेपर सभी वर्गके लोग गोमाताको श्रद्धापूर्वक सम्मान देते हुए उसके रख-रखावके प्रति सजग व्यवहार अपनाने लगेंगे।

इस प्रचारका सबसे सशक्त माध्यम होगा—मातृभाषा। चाहे वह मौखिक रूपमें किसानोंके समक्ष हो या फिर सरल भाषाका उपयोग करते हुए लेखोंद्वारा हो। इसलिये इस विषयके जानकार भारतीय विद्वानोंको भी अपनी-अपनी मातृभाषामें इस प्रचारको राष्ट्रधर्मके रूपमें उसी प्रकार प्राथमिकता देनी चाहिये, जिस प्रकार कि हमारे ऋषि-मुनियोंने इसे अपनाया था। तभी ज्ञान-विज्ञानकी सुगन्ध हमारे ग्रामवासियोंको सुवासित करेगी और वे उन्हें अपनानेकी ओर आकृष्ट होंगे। इस प्रकारके प्रचारसे भारतीयोंमें यह जागृति फैलेगी कि हमारे प्राचीन ग्रन्थ केवल पूजापाठकी पुस्तकें नहीं हैं; बल्कि वे मानवसमाज-विकासके प्रेरणास्रोत हैं। इस जागरणके फलस्वरूप भारतके कोने-कोनेमें कुटीर-उद्योगोंका जाल फैल जायगा और सर्वत्र खुशहाली छाने लगेगी। **[समाप्त]**

साधनोपयोगी पत्र

(१)

कर्मफलका भोग

प्रिय महोदय, सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आपके प्रश्नोंका संक्षेपमें उत्तर नीचे लिखा जा रहा है—

कर्म तीन प्रकारके हैं—'संचित', 'प्रारब्ध' और 'क्रियमाण'। बहुत प्राचीन कालसे लेकर अबतकके जो कर्म संगृहीत हैं, उनका नाम 'संचित' है। वे अनन्त हैं और उनमें नये-नये कर्म जा-जाकर एकत्र होते रहते हैं। इन संचित कर्मोंमेंसे कुछ कर्म फल प्रदान करानेके लिये पृथक् कर लिये जाते हैं और किसी एक जीवनमें उनका निश्चित फलभोग प्रारम्भ हो जाता है। इन फल देनेमें प्रवृत्त कर्मोंका नाम 'प्रारब्ध' है। एवं हम जो नवीन कर्म कर रहे हैं, उनका नाम 'क्रियमाण' है। ये तुरंत संचितमें चले जाते हैं। मनुष्य जो कुछ भी अच्छे-बुरे कर्म करता है, वह संचितमें चला जाता है। इन नये कर्मोंमें कुछ कर्म ऐसे भी प्रबल हो सकते हैं जो संचितसे तुरंत प्रारब्ध बनकर फल भुगता देते हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि वर्तमान कर्म किसी पुराने प्रारब्धका फल भुगतानेमें निमित्त बन जाता है और यह वर्तमान कर्म संचितमें ही रह जाता है।

अच्छे-बुरे कर्मोंका फल तीन तरहसे भोगा जाता है—१-तुरंत प्रारब्ध बनकर इसी जीवनमें अनुकूल या प्रतिकूल भोगके रूपमें—(यह भी सम्भव है कि पूरे कर्मका तुरंत प्रारब्ध न बने, आंशिक ही बने और शेष कर्म संचितमें रह जाय), २-स्वर्ग और नरक लोकोंमें सुख-दुःख-भोगरूपमें एवं ३-अच्छी-बुरी योनियोंमें सुख-दुःख-भोगरूपमें।

स्वर्ग-नरक लोक भी सत्य हैं। सभी शास्त्रोंमें इनका वर्णन है। सर्वमान्य गीतामें स्पष्ट कहा है—

ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्॥

(९।२०)

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।

(९।२१)

'वे अपने पुण्योंके फलरूप इन्द्रलोकको प्राप्त होकर स्वर्गमें दिव्य देवताओंके भोग भोगते हैं।' और 'वे उस विशाल स्वर्गलोकको भोगकर पुण्य क्षीण होनेपर पुनः मृत्युलोकमें चले आते हैं।'

नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम॥

(१।४४)

'उनको अनियत कालतक नरकमें निवास करना पड़ता है, ऐसा हमने सुना है।'

प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥

(१६।१६)

'वे विषय-भोगोंमें अत्यन्त आसक्त लोग अपवित्र नरकोंमें गिरते हैं।'

पुराणोंमें नरकोंके वर्णन तथा नरक-यन्त्रणा भोगनेवाले प्राणियोंके बहुत प्रसंग आये हैं, जो सत्य हैं।

इसी प्रकार अच्छी-बुरी योनियोंमें भी कर्मफल-भोग होता है। पुण्य-कर्म करनेवालोंको अच्छी योनि मिलती है, पाप-कर्म करनेवालोंको बुरी योनि। इसका वर्णन स्पष्टरूपसे छान्दोग्योपनिषद्में यों आया है—

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरञ्श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा। (५।१०।७)

'उन जीवोंमें जो अच्छे आचरणवाले होते हैं, वे शीघ्र ही श्रेष्ठ योनिको प्राप्त होते हैं और जो बुरे आचरणवाले होते हैं, वे तत्काल अशुभ योनिको प्राप्त होते हैं। वे कुत्तेकी योनि, सूकरयोनि या चाण्डालयोनिको प्राप्त करते हैं।'

भगवान्‌ने गीतामें भी कहा है—

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥

(१६।१९)

'उन द्वेष करनेवाले पापाचारी निर्दय नीच मनुष्योंको मैं संसारमें बार-बार आसुरी (सूकर-कूकरादि) योनियोंमें ही गिराता हूँ।'

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।

(१६।२०)

'वे मूढ़ जन्म-जन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं।'

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥

(६।४१)

'वह योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानोंके (स्वर्गादि) उत्तम लोकोंको प्राप्त होकर और बहुत कालतक वहाँ निवास करके फिर पवित्र श्रीमानोंके घर जन्म लेता है।'

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।

(६।४२)

'अथवा बुद्धिमान् योगियोंके कुलमें जन्म लेता है।'

इससे स्वर्ग-नरकादि लोकोंमें तथा उत्तम निकृष्ट योनियोंमें सुख-दुःखका भोग होना सिद्ध है।

मनुष्ययोनि उत्तम है और पशु आदिकी योनि निकृष्ट। परंतु उत्तम योनिमें भी बुरे कर्मके फलस्वरूप जीव दुःख प्राप्त कर सकता है—जैसे सर्वथा रोगी तथा नितान्त दरिद्र मनुष्य और निकृष्ट योनिमें भी अच्छे कर्मके फलस्वरूप सुख प्राप्त कर सकता है—जैसे राजघरानेका घोड़ा, सच्चे गो-पूजककी गाय, शौकीन बाबुओंके द्वारा पाला हुआ कुत्ता आदि।

उपर्युक्त तीनों कर्मोंमें 'प्रारब्ध' (जो कर्म फल देनेमें प्रवृत्त हो गये हैं)-का भोग तो अवश्य ही भोगना पड़ता है, परंतु सच्चे भावसे भगवान्का मङ्गल-विधान मान लेनेपर या ज्ञानके द्वारा भोक्तृत्व-बुद्धि मिट जानेपर सुख-दुःख नहीं होते। 'संचित' का नाश 'ज्ञानाग्नि' से, 'भक्ति' से और 'निष्काम कर्म' से हो सकता है और 'क्रियमाण' का अभाव भी ज्ञानके द्वारा कर्तृत्वबुद्धि न रहनेपर, केवल भगवत्प्रीत्यर्थ भगवान्की पूजाके रूपमें कर्म करनेपर अथवा कर्मोंमें सकाम भाव न रहनेपर हो सकता है। कर्मोंका सर्वथा अभाव ही जीवकी मुक्ति है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

जो कुछ है सब भगवान्का है

सम्मान्य महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपा-पत्र प्राप्त हुआ। आपने जो लिखा उसके उत्तरमें क्या लिखा जाय। मनुष्य यदि दूसरेके दुःखको अपना दुःख मानने लगे तो जगत्का बहुत-सा दुःख दूर हो जाय; परंतु इधर मनुष्यकी उदासीनता ही नहीं है, बल्कि आजके जगत्में तो हम बहुत-से लोग दूसरेके दुःखको अपना सुख बनाते हैं। यह बड़ी ही दयनीय स्थिति है। सच तो यह है कि मनुष्यके पास जो कुछ है, वह सारा-का-सारा प्रभुका है और प्रभुकी सेवाके लिये ही है। वह यदि उसे अपना मानता है तो सचमुच बेईमान और चोर है। श्रीमद्भागवतमें स्पष्ट आया है कि 'जितनेसे पेट भरे उतने पर ही अपना अधिकार है। उससे अधिकपर अधिकार माननेवाला चोर है और उसे दण्ड मिलना चाहिये।' यह भागवतके सातवें स्कन्धमें नारदजीका वचन है। आपसे मेरा यही निवेदन है कि आपके पास धन, बल, विद्या, बुद्धि जो कुछ भी है, अगर आप अपना कल्याण चाहते हैं तो उसे भगवान्का और भगवान्की सेवाके लिये ही मिला हुआ मानिये और उसको भगवान्की सेवामें ही समर्पित कर दीजिये। उसपरसे अपना अधिकार हटाकर उसे भगवान्का बना दीजिये तथा प्राणी-पदार्थोंपरसे अपनी ममता हटाकर ममता एकमात्र श्रीभगवान्में कीजिये; आपको अवश्य शान्ति मिलेगी। सांसारिक पदार्थोंसे न तो किसीको आजतक शान्ति मिली और न मिल सकती है—यह ध्रुव निश्चय है। जितना ही सांसारिक वैभव बढ़ेगा, उतनी ही चिन्ताकी ज्वाला बढ़ेगी तथा आप उसमें झुलसते रहियेगा। शान्ति-सुख केवल भगवच्चरणारविन्दमें ही है, और कहीं नहीं। उन्हींका आश्रय लीजिये और उन्हींमें ममता कीजिये। इसके सिवा और कुछ भी शान्तिका साधन नहीं। शेष भगवत्कृपा।

(३)

रामसे ममता, संसारमें समता

प्रिय भैया! सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। मनुष्य जानता बहुत है, जानना चाहता बहुत है; पर करना बहुत कम चाहता है; इसीलिये जानी हुई और जाननेयोग्य बातोंसे उसे विशेष लाभ नहीं होता। बहुत अधिक बातें जाननेसे बातें याद भी नहीं रहतीं। तुमने अपने लंबे पत्रमें जो कुछ बातें पूछीं, उन सबका यह बहुत थोड़ेमें ही उत्तर है कि तुम्हें जो कुछ प्राप्त है वह न तुम्हारा है और न तुम्हारे लिये है। इस बातका निश्चय कर लो और जो कुछ मिला है उसे प्रभुके लिये समझो। धन, जन, सेवा, मान, बुद्धि, विद्या, इन्द्रिय इत्यादि सब कुछ उनकी चीज मानकर ईमानदारी और सच्चाईके साथ बिना अभिमान, नम्रताके साथ उनके आज्ञानुसार उन्हींको अर्पण करते रहो। यह अपना सौभाग्य समझो कि भगवान्ने इसमें तुमको निमित्त बनाया। भगवान्को देनेके लिये अमुक संख्या या अमुक परिमाणमें कोई वस्तु हो—यह बात नहीं है। किसीके पास धन नहीं होगा तो वह कैसे देगा। किसीके पास विद्या नहीं है तो वह विद्या कहाँसे देगा। जो कुछ है, उसमेंसे अपनेपनको उठा लेना और उनका मान लेना—यही देना है। इसके बाद न उसे रखनेका लोभ होगा और न देनेका अभिमान। जगत्में सबसे बड़ा बन्धन ममता है। इसीसे पापोंकी उत्पत्ति होती है और ममतासे ही दुःख होते हैं। कितने लोग रोज मरते हैं और कितनोंका दिवाला निकलता है—हम कहाँ दुखी होते हैं? जहाँ ममता है, वहीं दुःख है। ममता ऐसी वस्तुसे करनी चाहिये जो अपनी है, सदा रहनेवाली है तथा किसी भी देश, काल, योनियोंमें जो अपनेसे अलग नहीं होती। वह वस्तु है श्रीभगवान्। जगत्में जो कुछ हो रहा है, होने दिया जाय। उसके परिवर्तन करनेका या बदलनेका मनोरथ न उठे। यहाँपर जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, हानि-लाभ होता ही रहेगा। यह संसारका स्वरूप है। संसार रहता है द्वन्द्वके स्वरूपमें। बस, भगवान्से तो केवल यह माँग की जाय कि जो होना है सो होने दो। कभी भी बदलनेकी आवश्यकता नहीं। बस, केवल तुम्हारा चिन्तन बना रहे। गोस्वामीजीका एक दोहा याद रखना—

तुलसी ममता राम सों समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुख दास भए भव पार॥

शेष भगवत्कृपा।

(४)

सिद्धियोंको प्रकाशित न करें

सादर सप्रेम हरिस्मरण!

आपका एक पत्र प्राप्त हुआ, पढ़कर प्रसन्नता हुई। आपने लिखा कि सात वर्षोंसे गायत्रीकी साधना कर रहा हूँ तथा सात पुरश्चरण पूरे कर लिये हैं, यह बहुत अच्छी बात है। आप साधनमें संलग्न हैं, यह आपपर भगवान्की परम कृपा है।

आपने पत्रमें लिखा कि मुझे वाक्-सिद्धि प्राप्त हो गयी है तथा आप जो भी कहते हैं वह सत्य हो जाता है। जो व्यक्ति अपने जीवनको साधन-भजनमें संलग्न कर लेता है, उसे स्वाभाविक रूपसे सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, परंतु इन सिद्धियोंको प्राप्तकर यदि वह राजी होने लगता है तथा समाजमें अपनी प्रतिष्ठा एवं यशके लिये उनका उपयोग करता है तो उसकी साधनाके विकासमें अवरोध होने लगता है, उसकी चमत्कारी सिद्धियाँ भी अधिक समयतक नहीं टिकतीं और साधकका जो मुख्य उद्देश्य है, वह भी प्राप्त नहीं हो पाता। इसलिये इन सिद्धियोंसे संतृप्त नहीं होना चाहिये तथा यथासम्भव इनका प्रचार-प्रसार न हो, इसका भी सदैव ध्यान रखना चाहिये। आप जो कुछ भी करते हैं, वह सब केवल भगवान्की प्रसन्नता और उनकी प्रीतिको प्राप्त करनेके लिये ही होना चाहिये।

आपने लिखा कि मैं अपने कार्यका प्रचार नहीं करता हूँ, यह बहुत अच्छी बात है। सत्-कर्म करनेवालेकी भगवान् सतत सहायता करते हैं तथा उनकी विघ्न-बाधाओंको भी दूर करते हैं। अतः पूरी तत्परता और श्रद्धा-विश्वासपूर्वक अपनी साधनामें संलग्न रहना चाहिये।

शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६३, शक १९२८, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिशेष ४। ३८ तक	मंगल	रोहिणी दिनमें २। २७ तक	५ दिसम्बर	मिथुनराशि रात्रिमें २। १३ बजेसे।
द्वितीया रात्रिमें ३। ५० तक	बुध	मृगशिरा ,, १। ५९ तक	६ ,,	× × ×
तृतीया ,, ३। २३ तक	गुरु	आर्द्रा ,, २। ० तक	७ ,,	भद्रा दिनमें ३। ३७ बजेसे रात्रिमें ३। २३ बजेतक।
चतुर्थी ,, ३। ४३ तक	शुक्र	पुनर्वसु ,, २। २८ तक	८ ,,	कर्कराशि दिनमें ८। २१ बजेसे, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ८। ३१ बजे।
पंचमी रात्रिशेष ४। ३० तक	शनि	पुष्य ,, ३। २९ तक	९ ,,	मूल दिनमें ३। २९ बजेसे।
षष्ठी ,, ५। ४१ तक	रवि	श्लेषा सायं ४। ५९ तक	१० ,,	सिंहराशि सायं ४। ५९ बजेसे, भद्रा रात्रिशेष ५। ४१ बजेसे।
सप्तमी अहोरात्र	सोम	मघा ,, ६। ५५ तक	११ ,,	मूल सायं ६। ५५ बजेतक, भद्रा सायं ६। ३२ बजेतक।
सप्तमी प्रातः ७। २१ तक	मंगल	पू० फा० रात्रिमें ९। १२ तक	१२ ,,	कन्याराशि रात्रिमें ३। ५० बजेसे, अष्टका श्राद्ध।
अष्टमी दिनमें ९। १९ तक	बुध	उ० फा० ,, ११। ४३ तक	१३ ,,	अन्वष्टका श्राद्ध।
नवमी ,, ११। २८ तक	गुरु	हस्त ,, २। २० तक	१४ ,,	भद्रा रात्रिमें १२। ३३ बजेसे।
दशमी ,, १। ३७ तक	शुक्र	चित्रा रात्रिशेष ४। ५२ तक	१५ ,,	तुलाराशि दिनमें ३। ३६ बजेसे, भद्रा दिनमें १। ३७ बजेतक, श्रीपार्श्वनाथ-जयन्ती (जैन)।
एकादशी ,, ३। ३७ तक	शनि	स्वाती अहोरात्र	१६ ,,	धनु-संक्रान्ति तथा मूल नक्षत्रके सूर्य दिनमें ३। २७ बजे, खरमासारम्भ, सफला एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी सायं ५। १९ तक	रवि	स्वाती प्रातः ७। ९ तक	१७ ,,	वृश्चिकराशि रात्रिमें २। ३७ बजेसे, सौर पौषमासारम्भ, प्रदोषव्रत।
त्रयोदशी ,, ६। ३५ तक	सोम	विशाखा दिनमें ९। ६ तक	१८ ,,	भद्रा सायं ६। ३५ बजेसे, मासशिवरात्रिव्रत।
चतुर्दशी रात्रिमें ७। २३ तक	मंगल	अनुराधा ,, १०। ३७ तक	१९ ,,	मूल दिनमें १०। ३७ बजेसे, भद्रा प्रातः ६। ५९ बजेतक।
अमावस्या ,, ७। ३९ तक	बुध	ज्येष्ठा ,, ११। ३७ तक	२० ,,	धनुराशि दिनमें ११। ३७ बजेसे, स्नान-दान-श्राद्धादिकी अमावस्या, वकुल अमावस्या (उड़ीसा)।

सं० २०६३, शक १९२८, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ७। २४ तक	गुरु	मूल दिनमें १२। ५ तक	२१ दिसम्बर	मूल दिनमें १२। ५ बजेतक।
द्वितीया सायं ६। ३९ तक	शुक्र	पू० षा० ,, १२। ७ तक	२२ ,,	मकरराशि सायं ५। ५९ बजेसे, चन्द्रदर्शन, राष्ट्रीय पौषमासारम्भ।
तृतीया ,, ५। २९ तक	शनि	उ० षा० ,, ११। ३९ तक	२३ ,,	भद्रा रात्रिशेष ४। ४३ बजेसे।
चतुर्थी दिनमें ३। ५७ तक	रवि	श्रवण ,, १०। ५२ तक	२४ ,,	कुम्भराशि तथा पंचक रात्रिमें १०। १७ बजेसे, भद्रा दिनमें ३। ५७ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
पंचमी ,, २। ४ तक	सोम	धनिष्ठा ,, ९। ४३ तक	२५ ,,	× × ×
षष्ठी ,, ११। ५७ तक	मंगल	शतभिषा प्रातः ८। २० तक पू० भा० रात्रिशेष ६। ४६ तक	२६ ,,	मीनराशि रात्रिमें १। ९ बजेसे, अन्नरूपा षष्ठी (बंगाल)।
सप्तमी ,, ९। ४१ तक	बुध	उ० भा० ,, ५। ६ तक	२७ ,,	मूल रात्रिशेष ५। ६ बजेसे, भद्रा दिनमें ९। ४१ बजेसे रात्रिमें ८। ३० बजेतक, गुरुगोविन्दसिंह जयन्ती।
अष्टमी प्रातः ७। २० तक नवमी रात्रिशेष ४। ५८ तक	गुरु	रेवती रात्रिमें ३। २६ तक	२८ ,,	मेषराशि प्रारम्भ तथा पंचक समाप्त रात्रिमें ३। २६ बजे।
दशमी रात्रिमें २। ४२ तक	शुक्र	अश्विनी ,, १। ५० तक	२९ ,,	पूर्वाषाढ़ नक्षत्रके सूर्य सायं ४। २४ बजेसे, मूल रात्रिमें १। ५० बजेतक, साम्बादशमी (उड़ीसा)।
एकादशी ,, १२। ३५ तक	शनि	भरणी ,, १२। २४ तक	३० ,,	वृषराशि रात्रिशेष ६। ६ बजेसे, भद्रा दिनमें १। ३८ बजेसे रात्रिमें १२। ३५ बजेतक, पुत्रदा एकादशीव्रत (सबका), अनोदनव्रत।
द्वादशी ,, १०। ४१ तक	रवि	कृत्तिका ,, ११। ११ तक	३१ ,,	कूर्मद्वादशीव्रत।
त्रयोदशी ,, ९। ८ तक	सोम	रोहिणी ,, १०। १९ तक	१ जनवरी	सोमप्रदोष।
चतुर्दशी ,, ७। ५५ तक	मंगल	मृगशिरा ,, ९। ४६ तक	२ ,,	मिथुनराशि दिनमें १०। २ बजेसे, भद्रा रात्रिमें ७। ५५ बजेसे।
पूर्णिमा ,, ७। १० तक	बुध	आर्द्रा ,, ९। ४० तक	३ ,,	भद्रा प्रातः ७। ३२ बजेतक, स्नान-दान-व्रतादिकी पूर्णिमा, माघ-स्नान प्रारम्भ।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६३, शक १९२८, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-शिशिर-ऋतु, माघ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ६। ५३ तक	गुरु	पुनर्वसु रात्रिमें १०। २ तक	४ जनवरी	कर्कराशि दिनमें ३। ५७ बजेसे।
द्वितीया रात्रिमें ७। ९ तक	शुक्र	पुष्य ,, १०। ५५ तक	५ ,,	मूल रात्रिमें १०। ५५ बजेसे।
तृतीया ,, ७। ५८ तक	शनि	श्लेषा ,, १२। २० तक	६ ,,	सिंहराशि रात्रिमें १२। २० बजेसे, भद्रा प्रातः ७। ३४ बजेसे रात्रिमें ७। ५८ बजेतक, संकष्ट श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ८। ३ बजे।
चतुर्थी ,, ९। ११ तक	रवि	मघा ,, २। ९ तक	७ ,,	मूल रात्रिमें २। ९ बजेतक।
पंचमी ,, १०। ५२ तक	सोम	पू० फा० रात्रिशेष ४। २२ तक	८ ,,	× × ×
षष्ठी ,, १२। ५२ तक	मंगल	उ० फा० अहोरात्र	९ ,,	कन्याराशि दिनमें १०। ५९ बजेसे, भद्रा रात्रिमें १२। ५२ बजेसे।
सप्तमी ,, ३। २ तक	बुध	उ० फा० प्रातः ६। ५१ तक	१० ,,	भद्रा दिनमें १। ५७ बजेतक।
अष्टमी रात्रिशेष ५। १० तक	गुरु	हस्त दिनमें ९। २८ तक	११ ,,	तुलाराशि रात्रिमें १०। ४५ बजेसे, उत्तराषाढ़ नक्षत्रके सूर्य सायं ५। १ बजेसे, अष्टकाश्राद्ध।
नवमी अहोरात्र	शुक्र	चित्रा ,, १२। २ तक	१२ ,,	अन्वष्टकाश्राद्ध।
नवमी प्रातः ७। ९ तक	शनि	स्वाती ,, २। २४ तक	१३ ,,	भद्रा रात्रिमें ८। ०० बजेसे।
दशमी दिनमें ८। ४९ तक	रवि	विशाखा ,, ४। २५ तक	१४ ,,	वृश्चिक राशि दिनमें ९। ५५ बजेसे, मकर-संक्रान्ति रात्रिमें ११। १४ बजे, भद्रा दिनमें ८। ४९ बजेतक, खरमास समाप्त, सूर्य उत्तरायण।
एकादशी ,, १०। १ तक	सोम	अनुराधा सायं ६। १ तक	१५ ,,	मूल सायं ६। १ बजेसे, सौर पौषमासारम्भ, षट्तिला एकादशीव्रत (सबका), मकर-संक्रान्तिजन्य पुण्यकाल दिनमें ३। १४ बजेतक।
द्वादशी ,, १०। ४७ तक	मंगल	ज्येष्ठा रात्रिमें ७। ८ तक	१६ ,,	धनुराशि रात्रिमें ७। ८ बजेसे, भौमप्रदोष, तिलद्वादशी।
त्रयोदशी ,, ११। १ तक	बुध	मूल ,, ७। ४५ तक	१७ ,,	मूल रात्रिमें ७। ४५ बजेतक, भद्रा दिनमें ११। १ बजेसे रात्रिमें १०। ५३ बजेतक, मासशिवरात्रिव्रत, मेरुत्रयोदशी (जैन)।
चतुर्दशी ,, १०। ४३ तक	गुरु	पू० षा० ,, ७। ५२ तक	१८ ,,	मकरराशि रात्रिमें १। ४७ बजेसे, रटन्ती कालिकापूजा (बंगाल), श्राद्ध-अमावास्या।
अमावास्या ,, ९। ५७ तक	शुक्र	उ० षा० ,, ७। ३२ तक	१९ ,,	स्नान-दान आदिकी मौनी अमावास्या, त्रिवेणी अमावास्या (उड़ीसा), अर्द्धकुम्भ (प्रयाग)।

सं० २०६३, शक १९२८, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ८। ४३ तक	शनि	श्रवण सायं ६। ४८ तक	२० जनवरी	कुम्भराशि तथा पंचक रात्रिशेष ६। १६ बजेसे, चन्द्रदर्शन।
[द्वितीया प्रातः ७। ९ तक [तृतीया रात्रिशेष ५। १५ तक	रवि	धनिष्ठा ,, ५। ४३ तक	२१ ,,	राष्ट्रीय माघमासारम्भ।
चतुर्थी रात्रिमें ३। ७ तक	सोम	शतभिषा ,, ४। २२ तक	२२ ,,	भद्रा दिनमें ४। ११ बजेसे रात्रिमें ३। ७ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
पंचमी ,, १२। ५० तक	मंगल	पू० भा० दिनमें २। ५० तक	२३ ,,	मीनराशि दिनमें ९। १३ बजेसे, वसन्तपंचमी, रतिकाममहोत्सव, सरस्वती-पूजन, मत्स्याधार-लेखनीपूजा (बंगाल), सुभाषचन्द्र बोस-जयन्ती।
षष्ठी ,, १०। २८ तक	बुध	उ० भा० ,, १। ११ तक	२४ ,,	श्रवण नक्षत्रके सूर्य सायं ६। १० बजेसे, मूल दिनमें १। ११ बजेसे, शीतलाषष्ठी (बंगाल)।
सप्तमी ,, ८। ८ तक	गुरु	रेवती ,, ११। ३१ तक	२५ ,,	मेषराशि प्रारम्भ तथा पंचक समाप्त दिनमें ११। ३१ बजे, भद्रा रात्रिमें ८। ८ बजेसे। रथसप्तमी।
अष्टमी सायं ५। ५१ तक	शुक्र	अश्विनी ,, ९। ५३ तक	२६ ,,	मूल दिनमें ९। ५३ बजेतक, भद्रा प्रातः ६। ५९ बजेतक, गणतन्त्र-दिवस, भीष्माष्टमी।
नवमी दिनमें ३। ४६ तक	शनि	भरणी ,, ८। २४ तक	२७ ,,	वृषराशि दिनमें २। ५ बजेसे, महानन्दानवमी।
दशमी ,, १। ५३ तक	रवि	[कृत्तिका प्रातः ७। ६ तक [रोहिणी रात्रिशेष ६। ७ तक	२८ ,,	भद्रा रात्रिमें १२। ५६ बजेसे।
एकादशी ,, ११। ५८ तक	सोम	मृगशिरा ,, ५। ३३ तक	२९ ,,	मिथुनराशि सायं ५। ५० बजेसे, भद्रा दिनमें ११। ५८ बजेतक, जया एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी ,, ११। १२ तक	मंगल	आर्द्रा ,, ५। २० तक	३० ,,	भीष्म-तिलद्वादशी, भौमप्रदोष।
त्रयोदशी ,, १०। २९ तक	बुध	पुनर्वसु ,, ५। ३६ तक	३१ ,,	कर्कराशि रात्रिमें ११। ३२ बजेसे।
चतुर्दशी ,, १०। १५ तक	गुरु	पुष्य रात्रिमें ६। २२ तक	१ फरवरी	मूल रात्रिशेष ६। २२ बजेसे, भद्रा दिनमें १०। १५ बजेसे रात्रिमें १०। २४ बजेतक, व्रत-पूर्णिमा।
पूर्णिमा ,, १०। ३१ तक	शुक्र	श्लेषा अहोरात्र	२ ,,	स्नान-दानादिकी पूर्णिमा, सन्त रविदास-जयन्ती, माघ-स्नान समाप्त।

कृपानुभूति

(१)

पिताकी सीख

जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया॥

मेरे पिताजी बड़ी ही श्रद्धासे नित्य श्रीरामचरितमानसका पाठ करते थे। बाल्यकालमें ही उन्होंने मुझे श्रीरामचरितमानसके कम-से-कम पाँच दोहोंका प्रतिदिन पाठ करनेका आदेश दे रखा था, जो आज भी अनवरत चल रहा है।

घटना सन् १९६१ की है। मैं अपने मूल निवास डिडवाना, जिला-नागोरमें दसवीं कक्षामें पढ़ता था। दसवीं बोर्डकी परीक्षाएँ नजदीक थीं। प्रत्येक विषयमें अच्छी मेहनत की थी, खासकर गणित तथा अंग्रेजीमें। मनमें ऐसा घमण्ड-सा आ गया था कि इन दोनों विषयोंमें शत-प्रतिशत नम्बर तो ले ही आऊँगा। कहते हैं कि भगवान्‌को दम्भी पसंद नहीं हैं। उस दिन गणितका पेपर था। दैवयोग ऐसा हुआ कि पेपर सरल होनेके बावजूद बिगड़ गया एवं पास होनेलायक नम्बर भी आने मुश्किल हो गये। ऐसी ही हालत और भी विद्यार्थियोंकी हुई। बाहर गाँवसे आये कई विद्यार्थी आगेकी परीक्षाएँ न देनेका निर्णय कर वापस अपने गाँव लौट गये।

उदास चेहरा लिये मैं अपने घर पहुँचा। माताजीके पूछनेपर हकीकत बयान की एवं आगेकी परीक्षाएँ न देनेका अपना निर्णय बताया। मेरी माताजी बहुत धार्मिक प्रकृतिकी थीं। वे बोलीं—तुम सदैव श्रीरामचरितमानसका पाठ करते हो, फिर उन प्रभुमें अविश्वास क्यों? उनकी ही शरणमें जाओ। मैं अपने अध्ययनकक्षमें आया एवं प्रभुका स्मरण कर रामायण खोली तो उपर्युक्त चौपाईपर नजर पड़ी। बात मेरी समझमें आ गयी। मैंने प्रभुसे क्षमायाचना की—हे प्रभो! मुझ अकिञ्चनको क्षमादान दो। प्रभुके चरणोंमें रोते-रोते मन शान्त भी हुआ एवं एकाग्रता-जैसी अवस्था बन गयी।

उसी बीच हृदयमें प्रकाशपुञ्जके रूपमें प्रभुका अवतरण हुआ एवं प्रेरणा हुई कि परीक्षाएँ चालू रखो, तुम्हारा मङ्गल होगा। पुनः जब मैं सामान्य स्थितिमें हुआ तो एकाग्रताकी स्थितिका स्मरणकर मनमें बड़ी शान्ति हुई और प्रभु श्रीरामजीपर आस्था दृढ़ हो गयी।

मैंने परीक्षा देनेका निश्चय किया और जब मैं अगले दिन परीक्षा-हालमें परीक्षा दे रहा था, समय समाप्ति की ओर था, इतनेमें ही प्रधानाचार्यजीने परीक्षा-हॉलमें प्रवेश किया और सूचना दी—बच्चो! गणित एवं अंग्रेजीके पेपर लीक हो गये हैं, अतः दुबारा होंगे।

राजस्थान-परीक्षाबोर्डमें सम्भवतः यह पहला अवसर था जब पेपर आउट हुए। श्रीरामजीकी अनुकम्पाका ख्यालकर मेरा गला अवरुद्ध हो आया, आँखोंसे अविरल प्रेमाश्रु बहने लगे। प्रभुने मेरी लाज रख ली, मैंने उनको कोटि-कोटि धन्यवाद दिया। परीक्षाएँ दुबारा हुईं। अच्छे नम्बरोंसे पास हुआ। मुझे लगा कि अपने परिश्रमका, अपनी विद्या-बुद्धिका तनिक भी अभिमान रखना ठीक नहीं। प्रभुको अपने भक्तका अभिमान पसन्द नहीं, वे तो विनय और शील देखते हैं और भक्तकी प्रपन्नता देखते हैं। इसलिये मनुष्यमात्रका कर्तव्य प्रभुमें अनन्य शरणागति ही है। 'पिताकी सीख' मेरे लिये वरदान बन गयी। —गोविन्दलाल सोनी

(२)

भगवत्स्मरण

पटना हाईकोर्टके सामने एक ऑफीसर्स फ्लैट है। उसकी छठी मंजिलपर मेरा लड़का रहता था। उसके पुत्रका नाम पंकज मोहन है। आजसे २०-२५ वर्ष पूर्व जब वह ६-७ सालका था, तब एक दिन अपने साथियोंके साथ खेल रहा था। जहाँ अभी लिफ्ट लगी है, पहले वह स्थान खाली और घेरारहित था। संयोगसे पंकज खेलते-खेलते अचानक उस खाली स्थान यानी उस मौतके कुएँमें गिर गया। यह देखकर सभी लड़के-बच्चे हल्ला मचाकर रोने लगे। एक-दो लड़के दौड़कर उसके पिताके पास आये। घरमें कोहराम मच गया, फिर भी साहस कर शीघ्र ही सभी लोग सीढ़ियोंसे नीचे उतरे। लड़का थोड़ा मूर्च्छित-सा था। नीचेका खाली स्थान ईंटोंसे भरा था। निकालनेपर देखा गया कि कोई गम्भीर चोट आदि नहीं है। सबने इसे भगवान्‌की अहैतुकी कृपा मानते हुए भगवान्‌को याद किया। चूँकि उसके पिता स्वयं डॉक्टर हैं, उन्होंने उसे अच्छी तरह देखा-भाला, परामर्शके लिये अन्य डॉक्टरोंके पास भी ले गये, एक्स-रे आदि अनेक तरहकी जाँच करवायी गयी, किंतु भगवान्‌की दयासे जब कोई गड़बड़ी दिखायी नहीं दी, तब संतोष हुआ। सब लोग भगवान्‌की महती कृपाका गुणगान करने लगे तथा रात्रिमें सुन्दरकाण्डका पाठ किया गया।

भगवान्‌की दया ही तो थी कि छठी मंजिलसे गिरा बालक पूर्ण स्वस्थ एवं प्रसन्न था। मामूली चोटें लगना तो स्वाभाविक था। अतः भगवान्‌को नित्य स्मरण करना चाहिये। यह भगवत्स्मरण सभी विपत्तियोंका निवारक है। —मोतीलाल अग्रवाल

पढ़ो, समझो और करो

(१)

कर्तव्यनिष्ठ पिता-पुत्र

'कर्नल! तुम्हारा पुत्र मैनुअल पकड़ लिया गया है। वह हमारे पास बंदीके रूपमें है। तुम आत्मसमर्पण कर दो, किलेके फाटक खोल दो; वरना तुम्हारे पुत्रको गोलीसे उड़ा दिया जायगा।' कम्युनिस्ट दलके नेता टेलीफोनपर कर्नल मास्करेडोसे कह रहे थे। उनकी वाणीमें बड़ा गर्व था।

कर्नल मास्करेडो एक वीर पुरुष थे। उन्होंने दृढ़तासे उत्तर दिया—'आपकी धमकीसे मैं कर्तव्यसे विचलित नहीं हो सकता। आप अपने बंदीके साथ यथेच्छ व्यवहार करनेमें स्वतन्त्र हैं।'

स्पेनमें भीषण गृहयुद्ध छिड़ा हुआ था। कम्युनिस्ट दल बहुत शक्तिसम्पन्न था; परंतु देशके सेनानायकको जब खबर मिली, तब उसने तत्काल भोजन-सामग्री तथा गोला-बारूदका समुचित प्रबन्ध करके पर्याप्त सेनाको टोलेडा नगरके किलेमें एकत्रित कर लिया और किलेका द्वार बंद कर दिया। कम्युनिस्ट दलने किलेपर धावा बोल दिया, पर वे किलेका कुछ भी नहीं बिगाड़ सके। आक्रमण-पर-आक्रमण हो रहे थे, पर सब व्यर्थ। कर्नल मास्करेडोका पुत्र मैनुअल मैड्रिड नगरमें पढ़ रहा था। कम्युनिस्टोंने उसे बंदी बना लिया और उसके जीवनकी कीमतपर विजय पानेकी पूर्ण आशा कर बैठे। परंतु कर्नल मास्करेडोका टेलीफोनपर उत्तर सुनकर कम्युनिस्ट दलका नेता दंग रह गया। एक पिता अपने पुत्रके जीवनके लिये इस प्रकार निरपेक्षभावसे बोल सकता है, उन्हें इसकी आशा नहीं थी। उसने सोचा—'कर्नलको यह विश्वास नहीं हुआ होगा कि उनका पुत्र मैनुअल बंदी हो गया। दूसरे, पुत्रकी करुण प्रार्थनासे पिताका वज्रहृदय पिघल जाता है।' ऐसा विचार करके उसने कर्नलको पुनः फोनपर कहा—'तुम इस भ्रममें न रहो कि मैनुअल बंदी नहीं है। लो तुम अपने पुत्रसे स्वयं बात कर लो।'

मैनुअलने टेलीफोन हाथमें लिया और बोला—'पिताजी! मैं मैनुअल बोल रहा हूँ। मैं अपने विद्यालयमेंसे बंदी बनाकर यहाँ लाया गया हूँ और भीषण यन्त्रणा भोग रहा हूँ। मुझे अन्तिमरूपसे यह कह दिया गया है कि यदि तुम्हारे पिता किलेका फाटक नहीं खोलेंगे तो तुम गोलीसे उड़ा दिये जाओगे। पिताजी! अब मेरा जीवन आपके हाथ है!'

कर्नल मास्करेडोने अपने पुत्र मैनुअलकी आवाज पहचान ली। पुत्रकी करुण वाणीने उनके हृदयको स्पर्श किया, पर कर्तव्यपालनकी दृढ़ताके सामने वात्सल्यकी लहर विलीन हो गयी। उन्होंने बड़ी गम्भीर वाणीमें दृढ़ताके साथ उत्तर दिया—'बेटे! मेरे प्यारे बेटे! तुम मेरा कर्तव्य जानते हो और अपना भी। मातृभूमिके लिये सत्पुत्रकी भाँति बलिदान होनेके लिये तैयार रहो; परमपिता तुम्हारे साथ हैं और सदा रहेंगे।'

वीर पिताका पुत्र भी वीर था। पुत्रने उत्तर दिया—'पिताजी! आप मेरी प्रार्थनाको अनसुनी कर दें और प्रसन्नताके साथ अपने कर्तव्यका पालन करें।' कम्युनिस्ट दलके नेता पिता-पुत्रकी बात सुन रहे थे, पर विजयकी लालसासे वे इतने प्रमत्त हो रहे थे कि वे कर्नल मास्करेडो एवं उनके पुत्रकी बलिदान-भावनाका आदर नहीं कर सके। उन्होंने तत्काल आज्ञा दी और मैनुअल गोलीसे उड़ा दिया गया।

कर्नल मास्करेडो अपने कर्तव्यपर अटल रहे। संघर्ष जारी रहा। कम्युनिस्ट दल किलेको तोड़नेमें असफल रहा। अन्तमें छः मास होते-होते भगवान्‌ने कर्नल मास्करेडोकी सहायता की और कम्युनिस्ट दल खदेड़ दिया गया। 'अखण्ड-आनन्द'

(२)

नरके रूपमें नारायण

अप्रैल १९९० की बात है। मैं बंगलोरसे टैक्सीद्वारा मैसूर और वृन्दावन गार्डेन देखने गया। साथमें मेरी पत्नी, मेरा सबसे छोटा पुत्र और तीन मित्र थे। वृन्दावनसे बंगलोर लौटते समय रात नौ-दसके बीच हमलोगोंकी गाड़ी जंगलके रास्तेसे गुजर रही थी कि टैक्सीके एक चक्केमें पंचर हो गया, गाड़ी रुक गयी। चालकने बताया कि उसके पास स्टेपनी (अतिरिक्त चक्का) तो है पर उसमें भी पंचर है। गाड़ी आगे बढ़ नहीं सकती थी, बड़ी विषम स्थिति थी। कोई बस या गाड़ी (कार) हाथ देनेपर रुकती नहीं थी। मेरा हाथ अचानक एक तेज रफ्तारसे आती कारको रोकनेके लिये अपने-आप विद्युत्-गतिसे उठ गया। वह गाड़ी रुक गयी और उसमेंसे एक सुन्दर व्यक्तित्वका पुरुष जो सुन्दर

पोशाकमें भी था, उतरा और जोरसे कड़ककर बोला—'ह्वाई डिड् यू स्टॉप मी?' (आपने मुझे क्यों रोका?) हमलोगोंने हाथ जोड़कर अपनी मजबूरी और कष्टका इजहार उससे किया। उसने हमलोगोंकी गाड़ीके चालकको डाँटा और हमलोगोंसे कहा कि यह जगह तो बहुत खतरनाक है। खैर, आपलोग मेरी गाड़ीकी स्टेपनी ले लें। उसने अपनी गाड़ीकी स्टेपनी दे दी। हमलोग आगे बढ़े। ३० किलोमीटरके मंडाई जिलेके मुख्यालयमें हमलोगोंकी टैक्सीके चक्केकी मरम्मत हुई और उक्त सज्जनको उनकी स्टेपनी वापस की गयी। वे मंडाईमें एक होटलमें हमलोगोंकी प्रतीक्षा कर रहे थे। दरअसल उन्हें भी बंगलोर ही जाना था, जो मंडाईसे पंचानवे किलोमीटर दूर था। पर वे सज्जन हमलोगोंके लिये ही रुके थे। हमलोगोंने बड़ी नम्रतासे उनका नाम-पता पूछा। उन्होंने बड़ा मार्मिक उत्तर दिया—'यू केम टू माई प्रोविन्स, लैण्डेड इन ट्रबुल, आई हेल्प्ड यू। इफ आई गो टू योर प्रोविन्स एण्ड लैंड इन ट्रबुल, यू शुड हैल्प मी, दैट्स माई एड्रेस, डॉन्ट वेस्ट टाईम, प्रोसीड ऑन' (आप मेरे राज्यमें आये, आप कष्टमें पड़ गये, मैंने आपकी सहायता की। आपके राज्यमें जब मैं आऊँगा और कष्टमें पड़ जाऊँगा, तब आप भी मेरी सहायता करियेगा, यही मेरा पता है। समय बर्बाद मत करें, आगे बढ़ें)। उनकी बात सुनकर हमलोग भौंचक्के-से रह गये। खैर, एक बजे रातको हमलोग बंगलोर पहुँचे और उस व्यक्तिने रास्तेमें हमलोगोंसे अपनी गाड़ीको पीछे रखा। हमारी सुरक्षामें वे मंडाईसे कुछ विलम्ब करके ही चले थे; क्योंकि उनकी गाड़ी बहुत तेज चलती थी। वे और हमलोग बंगलोरकी सरहदपर साथ ही पहुँचे, जहाँसे उन्होंने अपनी गाड़ी आगे बढ़ायी (ओवरटेक किया)। क्या वे व्यक्ति नरके रूपमें नारायण नहीं थे?

—भोलानाथ सिन्हा

(३)

प्रदोष-व्रत करनेसे नौकरी मिल गयी

मैं एक साधारण घर-परिवारका हूँ। मेरी बचपनसे ही धार्मिक प्रवृत्ति रही है। मेरे इष्टदेव भगवान् भोलेनाथ हैं। मैंने अपनी पढ़ाई पूरी करनेके बाद नौकरीके लिये प्रयास करना शुरू कर दिया, लेकिन मुझे नौकरी नहीं मिली। नौकरी न मिलनेतक मैं शादी नहीं करना चाहता था, लेकिन बढ़ती उम्रके साथ घरवाले मुझपर शादी करनेके लिये दबाव डालने लगे, इसलिये मुझे उनतीस सालकी उम्रमें शादी करनी पड़ी।

शादी होनेके बाद भी मैंने नौकरीके लिये प्रयास किया, लेकिन नौकरी नहीं मिली। फिर मैंने बहुतसे उद्योग किये, लेकिन उनमें मुझे घाटा ही लगा। मैं अपनी जिन्दगीसे निराश हो चुका था। आत्महत्या करनेके विचार मेरे मनमें आया करते थे, लेकिन भगवान् भोलेनाथपर मेरा बचपनसे ही पूरा विश्वास था कि भगवान् भोलेनाथ एक-न-एक दिन मेरा अच्छा ही करेंगे। ये तो मेरे पूर्वकर्मके फल हैं, जो मुझे भुगतने पड़ रहे हैं।

एक दिन मैंने कल्याणमें 'प्रदोषव्रतकी महिमा'का एक लेख पढ़ा। उसे पढ़कर मैंने प्रदोषव्रत करनेका निश्चय किया।

मैंने अपने मनमें ठान लिया था कि जबतक मुझे कोई नौकरी नहीं मिलती, तबतक मैं यह व्रत करता रहूँगा। काम न होनेसे मैं पाँच-दस रुपयोंके लिये भी मोहताज हो गया था, लेकिन मैंने हिम्मत नहीं हारी। मेरा अपने इष्टदेव भगवान् भोलेनाथपर पूरा विश्वास था। मैं हर दिन समाचार-पत्रमें नौकरीका विज्ञापन देखता था और उसके लिये स्पर्धा-परीक्षा भी देता था। परीक्षाके लिये पढ़ाई भी करता था। ऐसी मैंने बहुत-सी परीक्षाएँ दीं। आखिर मैं एक परीक्षामें पास हो गया, जिसमें बहुत-से लड़के परीक्षामें बैठे थे और एक जगह थी। अच्छे अंकोंसे पास होनेसे और इण्टरव्यू अच्छा हो जानेसे मेरा सरकारी नौकरी के लिये चयन हो गया। उस समय मेरी उम्र सैंतीस साल थी। इस उम्रमें सरकारी नौकरी मिलना—यह भगवान् भोलेनाथके प्रदोषव्रतसे ही सम्भव हो सका—ऐसा मेरा पूरा विश्वास है।

इसलिये 'कल्याण' के पाठकोंसे मेरी विनती है कि प्रदोषव्रत अमोघ फलदायी है। अतः अपना मनोरथ पूर्ण करनेके लिये प्रदोषव्रत करना चाहिये। इस व्रतको सच्ची लगन, पूर्ण विश्वास और शुद्ध अन्तःकरणसे करना चाहिये। आशुतोष भगवान् भोलेनाथ सबका कल्याण करनेवाले हैं।

—हरिदास



मनन करने योग्य

आदर्श शिक्षक

सन् १९२५-२६ की बात है। गुजरातके चरोत्तर क्षेत्रका एक युवक विद्यार्थी 'डेकन एज्युकेशन सोसायटी, कॉलेज पूना' में दाखिल हुआ। वह इण्टर साइन्सका विद्यार्थी था। दूसरे ही दिन प्रात: छ: बजे उसे प्रयोगशालामें बुलाया गया। जब वह प्रयोगशालामें पहुँचा, उसने देखा—एक कोनेमें एक आदमी सफाई कर रहा है। उस विद्यार्थीकी मेजपर अभी आवश्यक सामान नहीं रखा गया था। अत: उसने अपने गुजरात-विद्यालयकी आदतके अनुसार सफाई करनेवाले व्यक्तिको पुकारते हुए कहा—'जरा यहाँ तो आओ और देखो, सामने पड़ी हुई टेस्ट ट्यूब भी लेते आना।'

सफाई करनेवाले व्यक्तिके कानमें यह आवाज पड़ते ही वह आवश्यक वस्तुएँ लेकर विद्यार्थीके सम्मुख आ खड़ा हुआ। विद्यार्थीने उस व्यक्तिपर दृष्टि डाली और वह भौंचक्का-सा रह गया। उसने देखा—उसके आदेशपर आवश्यक वस्तुएँ लेकर आनेवाले व्यक्ति उस कॉलेजके वाइस प्रिंसिपल और रसायन-शास्त्रके सुविख्यात अध्यापक प्रोफेसर कोल्हटकर थे। प्रोफेसर कोल्हटकर उस विद्यार्थीकी मन:स्थिति जान गये। उन्होंने उस युवकको कुछ भी विचार न करनेको कहा तथा प्रोत्साहित किया कि वह अपना काम करता रहे। पर प्रोफेसर कोल्हटकरकी इस विनम्रताने विद्यार्थीको ऐसी शिक्षा दी कि उसने फिर जीवनभर किसीको इस प्रकार आदेश नहीं दिया।

प्रोफेसर कोल्हटकर उस शिक्षा-संस्थाके 'स्वयंसेवक' थे। मामूली वेतन लेकर वे रात-दिन कार्यरत रहते थे। संस्थापर अधिक आर्थिक बोझ न पड़े, इस हेतुसे वे सुबह पाँच बजे प्रयोगशालामें आ जाते थे और सब चीजोंको साफ करके प्रयोगके लिये व्यवस्थित कर देते थे। विद्यार्थियोंकी प्रथम टोली सुबह छ: बजे आती थी। बारह बजेतक प्रयोग चलते थे। फिर आधे घंटेमें भोजनादिसे निवृत्त होकर श्रीकोल्हटकर कॉलेजमें व्याख्यान देनेके लिये हाजिर हो जाते थे।

'कम खर्च, उत्तम काम'—यह प्रोफेसर कोल्हटकरका जीवन-मन्त्र था। इंटर साइन्स कॉलेजके बड़े कक्षमें ४५० विद्यार्थी बैठते थे। पूर्ण शान्तिके वातावरणमें वे व्याख्यान देते थे। उनके व्याख्यानमें एक भी विद्यार्थी गैरहाजिर नहीं होता था। रातके बारह बजेतक वे अभ्यासकक्षमें बैठकर अगले दिनका व्याख्यान तैयार करते थे।

इसके अतिरिक्त प्रोफेसर कोल्हटकर विश्वविद्यालयकी सीनेट, सिंडिकेट और अन्य समितियोंमें भी कार्यरत रहते थे, किंतु वे अपने शिक्षणकार्यमें क्षति नहीं पहुँचने देते थे। उन्होंने खद्दरका एक कोट बनवा रखा था। सत्रके प्रारम्भसे यही एकमात्र कोट पहनकर वे अध्यापन करते थे। रविवारके दिन थोड़ा समय मिलनेपर उसी कोटको धो-सुखाकर फिर उसको पहन लेते थे। उनकी आर्थिक परिस्थितिसे विद्यार्थीलोग अपरिचित न थे। अत: उन्होंने बड़ा विनयपूर्ण एक प्रार्थना-पत्र लिखकर उनके पास भेजा कि 'हम सभी विद्यार्थी मिलकर एक अच्छा कोट खरीदकर आपको भेंट करना चाहते हैं। कृपया आप इसकी अनुमति हमें दें।' प्रार्थना-पत्र मिलते ही प्रोफेसर कोल्हटकरने विद्यार्थियोंको बुलाकर कहा—'मित्रो! आपलोगोंकी भावनाके लिये मैं कृतज्ञ हूँ; किंतु मेरा कोट अभी फटा नहीं है और जब एक ही कोटसे काम चल सकता है, तब दूसरे कोटकी क्या आवश्यकता है फिर भी यदि आपलोगोंके पास कुछ पैसे हों तो उतने पैसे मुझे दे दीजिये। इस संस्थाको अभी कुछ पैसोंकी आवश्यकता है। आपके पैसोंसे प्रयोगशालाके लिये कुछ उपकरण खरीदे जायँगे। आपलोगोंके पैसे संस्थाके लिये दानमें जमा किये जायँगे।'

प्राध्यापकके त्याग और समर्पण-भावसे विद्यार्थीलोग दंग रह गये। गुजराती विद्यार्थी तो आश्चर्यचकित रह गया। उसके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही, जब कुछ दिनों बाद उसने सुना कि उसके साथ पढ़नेवाला कोल्हटकर नामक विद्यार्थी प्रोफेसर कोल्हटकरका पुत्र है तथा वह कक्षामें छ: बार रसायनशास्त्रमें अनुत्तीर्ण हो चुका है। प्रोफेसर कोल्हटकर उस विभागके सर्वेसर्वा थे, परंतु उन्होंने अपने पुत्रको छ: बार अनुत्तीर्ण होने दिया, उसकी अयोग्यतापर उसे आगेकी कक्षामें जानेसे रोक दिया।

वही गुजराती विद्यार्थी बादमें एक अच्छे डॉक्टर बने और वे अपने गुरुदेव प्रोफेसर कोल्हटकरकी पावन-स्मृतिके रूपमें सादगी, निष्ठा एवं सेवाभावनाको जीवनभर अपनाये रहे। 'अखण्ड-आनन्द' —ईश्वरभाई पटेल

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०६२ से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०६३ तक रही है)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे नाम-स्मरण करवाते हैं।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस वर्ष भी इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या ५७,६८,४०,००० (सत्तावन करोड़, अड़सठ लाख, चालीस हजार)

(ख) नाम-संख्या ९,२२,९४,४०,००० (नौ अरब, बाईस करोड़, चौरानबे लाख, चालीस हजार)

(ग) षोडश नाम-महामन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर अमेरिका, नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

स्थानोंके नाम—

अंता, अंधारकाच, अंधेरी, अंबाजोगाई, अंबाला कैंट, अंबाला छावनी, अंबाला शहर, अंबिकापुर, अकबरपुर, अकरोंजा, अकलतरा, अकलैरा, अकांवाली, अकोट, अकोड़ा, अकोढ़ी, अकोदिया, अकौर, अगस्तमुनि, अगौस, अचरोल, अचौसा, अजबपुर खुर्द, अजबपुरा, अजमेर, अजाड़ीगाँव- गुड़ौली, अठगाँ सिलिङ् अड़ी, अतरपुरा, अनपरा, अपर आई०टी०रोड, अफजलपुर, अबूसईदपुर, अभयपुर, अमगाँव, अमड़ाड, अमनपुर, अमनौर, अमरपुरा (मोहानियाँ), अमरा, अमरावती, अमरावती (घाट), अमरोहा, अमला, अमायन, अमिला (नवकापुर), अमिलिया, अमृतपुर, अमृतसर, अयाना, अरजपुर, अरटियाखुर्द, अरड़का, अरनेठा, अरनोदा, अरर, अररिया, अररिया-बैरगाछी, अरैला, अर्जुनपुर, अर्रोली, अलवर, अलाचौर, अलीगढ़, अलीपुराकलाँ, अल्मोड़ा, अशुरेश्वरपातल, अशोकनगर, असदपुर, असनावर, अस्तरा, अहमदनगर, अहमदाबाद, अहिरौली-तुलादास आंटाखास, आऊबा, आखैर, आगरा, आजमपकरिया, आट्टरगा, अदर्शचवा, आनन्दनगर (घोर्टप), आनन्दनगर (फरेन्दा), आनापुर सरैया, आभानेरी, आमगाँव बड़ा, आमडीहा, आमामुड़ा, आयर, आरा, आरूदजावे, आलाबैतड़ी, आलीपुर, आशापुर (आखर), आष्टा, आसन कुंडिया, आसी, आसैर, इंदवार, इंदौर, इचलकरंजी, इच्छापुरी, इजोत, इटारसी, इटावा, इन्द्रगढ़, इमलीखेड़ा, इमामनगर, इलाहाबाद, इसौली, इस्लामपुर, ईटहरी, ईरैलभेली भाग-१ एवं २, ईशाकचक, ईश्वरनगर, ईसनपुर, उखुलबाजार, उछटी, उजान-गंगौली, उजीना, उज्जैन, उड़ाहाफुलवरिया, उदयपुर, उदयाखेड़ी, उमरधा, उयाल, उरई, उरतुम, उस्मानाबाद, ऊँचिया, ऊगू, ऊटकमंड, ऊदपुर, ऊसरी, ऋषिनगर, एकवनडांड़, एटा, एतला, एनखेड़ा, एरंडोल, एरू, ऐंचाया, ओछापुर, ओड़ेकेरा, ओसरना, औरंगाबाद, औरेई, औरैया, ओसरना, कंचनपिंडरा, कंदकुर्ती, कंदवा, कंसोपुर, ककडई-सुलह, ककराला, ककरिया, कचन्दा, कछुआ, कछुआ चकौती, कछुवी, कजीना (दंतोला), कटक, कटगी, कटघोरा, कटनी, कटरा, कटरा-सलेहा, कटहरी-२ (नेपाल), कटौली, कठार, कठुआ, कठूमर, कठौती, कड़वान्द, कड़ीला, कड़ैल, कतिरा, कथगवाँ, कथैयाँ,कदवासा, कनवास, कनेई, कन्नौज, कन्नौद, कपसा, कपासन, कपिलवस्तु तौलिहवा (नेपाल), कपूरीसर, कमरगामा, कमलाऊ, कमासिन, कमोला, करजा, करजोदा, करड़ी, करनाना, करनाल, करमसद, करम्मर, करमाला, करवाँ (आरा), करवाड़, करवारी, करहल, करावाड़ा, कराह, करेली, करैरा, करौली, कर्णपुर खैरैल, कलंब, कल्याण, कवलपूरा-मठिया, कवाई, कसरावद कसहापूर्व, कसोलर, कांगपोक्पी, कांगलातोम्बी, काँगू, काँटाबाँजी, कांडे (किमाड़ी), कांडे (मूलाकोट), काँणा, काँवट-टाऊन, कांहरगाँव, काघरगाँव, काजड़ा, काजमपुर, काटोल, कादीपुर, कानड़ी सिम, कानपुर, कानूजा, कान्दीवली, कापड़ीवास, कामता, कामदेवपुर, कामा, कायस्थान, कारगू, कारव, कारा दुबे बिगहा, कारी कलवारी, कारोङ्ग, कालका, कालपी, कालाडेरा, कालापहाड़, कालापीपलगाँव, कालिंपोंग, कालीपुर, कालूखांड, काशीपुर,

कासगंज, किर्तीनगर, किलकिलेश्वर, किसगो पांडेडीह, कुंडल (गरही), कुँवारिया, कुआहेड़ी, कुचामन सिटी, कुड़लगा, कुड़ाना, कुनल्ता, कुनिहार, कुन्हील पनेरा, कुबरी, कुमड़ी-सिमली, कुमरडीह, कुमाल्डीपैनों, कुरदा, कुरमीडीह, कुरावली, कुलियारा, कुलुपटांगाबस्ती, कुल्लू, कुल्हार, कुशलगढ़, कुसैला, कूंचलवाड़ाकलाँ, कूदन, कृष्णगढ़, कृष्णनगर, केकड़ी, केडगाँव (देवी), केराय, केशोद, केशोपुर, केसिंगा, कैथियां (बसंतराय), कैनखोला, कैलारस, कोंडागाँव, कोंढ़ाली, कोटद्वार, कोटबन्दना, कोटमी, कोटहा, कोटा, कोठी, कोडरमा, कोतमा, कोनौली, कोपरिया, कोमना, कोयम्बटूर, कोयलादेवा, कोरबा, कोर्रा, कोलकाता, कोलहन्टा पटोरी, कोलियरी, कोलिया, कोलूआ, कोसीकलाँ, कोहिना, कौड़ीहार, कौलेती (नेपाल), कौवाताल, कौहाकुड़ा, क्वारी, खंडवा, खकसीस, खजूरी, खजूरीरूण्डा, खटाव, खटौराखुर्द, खड़गवाँ, खड़दह, खतौली, खनगाँव, खप्टिहाकलाँ, खमरिया, खरगापुर, खरगोन, खराटी, खलवाना, खवसपुरा, खाचरौद, खातीपुरा, खातेगाँव, खानपुर, खानपुरा, खामखेड़ा, खारूपेटिया, खालवागाँव, खालेगाँव, खिरनी, खिरियानाका, खीमसर, खुँटपला, खुजावा, खुरई, खुरजा, खुरसीपार, खुरहंड, खुरहानमिलिक, खुरुसलेंगा, खुर्दा, खुर्दारोड, खूँटलिया, खेड़कागुजर, खेत, खेतड़ी, खेतड़ी बैतड़ी, खेलदेशपांडे, खैजराहाट, खैरखाँ, खैरथल (छाछरो), खैरनगर, खैराचातर, खैरी, खोखरा, खोड, खोडी-टिहरी-गढ़वाल, खोला, खोलीघाट मुवाणा, ख्यामई, गंगरार, गंगाशहर, गंगेव, गंगौली, गंडाह, गजनई (सोहागपुर), गजनेर, गठिया, गढ़पुरा, गढ़बसई, गढ़शंकर, गढ़ाकोटा, गढ़िया, गढ़ी कानूगो, गढ़ीगढसान, गढ़ीपुरा, गड़सा, गणकोट, गदरपुर, गरंगड़ा, गरनियाँ, गरयाकोल, गरसाहड़, गरोठ, गल्लाटोला, गहनकर, गया, गाजियाबाद, गाजीपुर, गाडरवारा, गाड़ाटोल, गालुडीह, गिठगड़ा, गिरिजास्थान, गुंजेवाही, गुढ़ाकटला, गुड़गाँव, गुड़ाकलाँ, गुड़ासूरसिंह, गुतुरमा, गुना (गोसाई), गुनियालेख, गुमानीवाला, गुराड़ियाजोगा, गुलबर्गा, गुहला, गूँठ गरसाड़ी, गूजरवाड़ा, गूलर, गैरतलाई, गोंडल, गोईंदा, गोकुलेश्वर नायल, गोठड़ा, गोपलिन चुवा, गोपालपुर (कुंड), गोपाल मैना, गोपी, गोबरौरा, गोरेगाँव, गोलवा, गोविन्दगढ़, गोविन्दपुर, गोंछेंणा (रिखणीखाल), गौड़ीहाट, गौरीगंज, गौरीपुर (चाटाल), ग्यानसू, ग्वालियर, ग्वालीपुरा, घगोंट, घघरा, घटकना, घरैहली बलग, घसको, घाटकोपर, घाटमपुरकलाँ, घाटवा, घासेड़ा, घुंसी, घुगर, घुघली, घुघुपाड़ा (पश्चिम), घुमका, घेनड़ी, घेरा, घेवड़ा, घोंघाडीह, घोड़ास, घोड़ेगाँव, घोरपुरा, घोराठी, घोसको, चंगईपुर, चंडावल, चंडीगढ़, चंडीस्थान, चंदनकियारी, चंदनगाँव, चंदला, चंदेरिया, चंदेरी, चंद्रकुटीर—हलद्वानी, चंद्रहटी, चकसिंगार, चट्टी अनन्तपुर, चपरवार, चमरौला, चरखारी, चरखीदादादरी, चरघरा, चलाखुटोल सांखु, चाँदरानी, चाईबासा, चाकरोद, चाकुलिया, चारहजारे, चास, चिंचोली, चिचगढ़, चिटगुप्पा, चितनगला, चितभवन, चिनारथलकलाँ, चिरईडोंगरी, चिलौली, चिल्हारी, चूरू, चेन्नई, चैतड़ू, चैनपुर, चैसार मथुरा-बाजार, चोटलिया, चोरौत, चौंतराका खेड़ा, चौखा, चौखुटियागणाई, चौड़ागाँव, चौतलाय, चौफेरी, चौमहला, चौमू, चौरास, चौरी, चौली, चौसा (पांडे टोला), छकना, छजना, छतरपुर, छत्तरपुर, छापड़ा, छापर, छिंदवाड़ा, छिडलहा, छिछोर, छोटालाम्बा, छोटी खाटू, छोटी जमात, जंगबहादुरगंज, जंघोरा, जंडियालागुरु, जगटी, जगतपुर, जगदलपुर, जगराओ, जगहथा, जगाधरी, जजुराली, जटनी, जनोटी-पालड़ी, जन्नारदेव, जपतहरी, जबलपुर, जमोड़ी, जम्मू, जयपुर, जयमलसर, जरुड, जरौली, जलगाँव, जलगाँव (जामोद), जलहल कुकरमुड़ा, जलालपुर बाजार, जल्तूरी, जसो, जसौंलीखर्ग, जहाँगीराबाद, जाँजगीर, जाखपंत, जाजोता, जादोछापर, जानडोल, जाफरपुर, जाबड़िया भील, जामपाली (छोटे), जायधाकर्रा, जालंधर, जालंधरसिटी, जालना, जालसू रेलवेस्टेशन, जिंतूर, जितवारपुर, जियाराम राघोपुर, जींद, जीरापुर, जुगसलाई, जुट्ठा, जुन्नारदेव, जुलगाँव, जूनालखनपुर, जैतारण, जैतो, जैनपुरा, जैपोर, जैसलमेर, जैसलसर, जैसीनगर, जोगिन्दरनगर, जोगी बड़दू, जोगेश्वरी, जोधपुर, जोरावरपुरा, जोरी, जोशीखोला, जौनपुर, जौरा, ज्ञानपुरा, झमरिया, झाँसी, झाडेश्वर, झाबर, झाबुआ, झारसुगुड़ा, झालरापाटन, झालावाड़, झिंझाना, झिटकी, झुंझुनू, झूँसी, झूठा, झूलाघाट, झोकर, झोझूकलाँ, झोटवाड़ा, झोथराखेड़ा, झौंथरी, टंठेरी, टनकू राजाआहार, टाघन्डुब्बा (नेपाल), टिकरिया, टिक्कर, टी०वाईचोंग बजार, टुंडी, टेकापार, टेघरा, टेमर, टेमाभेला, टोंटरी (बाड़ी), टोडाभीम, टोड़ी, टोरड़ा (खारली), ठकठौलिया, ठकनालहिया, डकोर, डगलाका खेड़ा, डमक, डहरिया, डाबड़ी, डाबरघुआ-पाटरा, डाबरधापात्रा, डाबरा, डालमियानगर, डालामारा (झापीगुड़ी), डिडवाड़ी, डिबाई, डिमौली, डिलारी, डीडवाना,

डुगली, डुमरा, डुमरिया, डुमरीबुजुर्ग, डूँगरपुर, डूंडलोद, डेगाना, डेरवा, डोंबिवली, डोमचाँच, डौंडी-लोहारा, ढंगी, ढंढेरी, ढगरानियाँ, ढाँगू (नेर), ढाँढ़र (पट्टी), ढागरी, ढेंकिकोट, ढेंगाडीह, ढोसर, ढौर (मिश्रा), तंवरा, तरकेड़ी, तरभा, तरोडारोड, तरौका, तलवंडीभाई, तलोटी, तवड़ा, ताजनीपुर, ताथेड़, तारेथाङ्ग, कुपरपाते, ताल, तालमेंडा, तितरा आशानन्द, तिरहुतिया टोल, तिरुप्पालैवनम्, तिरुवण्णामलै, तिवारीपुरखुर्द, तीतरिया, तीनफेड़िया, तीसपरी, तुकपलासया, तुनि, तुपकवोरा, तुर्कतेलपा, तेजासर, तेनाली, तेवड़ी, तेवाड़ीखोला, तोंडिकट्टी, तोपाकोलियरी, तोरना, तोरीबारी, तोला, थरेट, थांदलफलब्रुद्रुक, थाना, दड़ीबा, दतिया, दमोह, दयाछपरा, दयानगर, दरभंगा, दसूहा, दहमी, दांडिया, दांता, दांतारामगढ़, दातारपुर, दापोरिजो, दामनजोड़ी, दामाखेड़ा, दामापुरछाटन, दारानगरगंज, दिग्घी, दिग्विजयग्राम, दिमनी, दियरी, दिरखोला, दिल्ली, दिलौरी-अबूसईदपुर, दीक्षितपुर, दीगरा, दीनी, दीपपुरा, दुबजोरा, दुबेड़ी दार्चूला, दुर्ग, दुर्गाडीह, दुलचासर, दुलावनी, देईखेड़ा, देदौल, देरगाँव, देवकुली (ब्रह्मपुर), देवखैरा, देवगढ़, देवगढ़-मदारिया, देवगाँव, देवघर, देवठी, देवतोली, देवदह, देवनगर बानूछापर, देवपुरा, देवबरुणार्क, देवभोग, देवरिया, देवरी, देवरीकलाँ, देवरी नाहरमऊ, देवरी बखत, देवलसगाँव, देवसारी, देवीपुर-गम्हरिया, देहरादून, दोरवाँ, दोली, दौनी, दौलतगढ़, दौसा, धनकोली, धनकोसा, धनपतगंज, धनपुरा, धनपुरी, धमधा, धमौरा, धरमापुर जारंग, धरवार, धराकड़, धर्मपुरा, धर्मशाला, धलवाड़ी, धामन्दा (खुजनेर), धारजोल, धारवाड़, धावाबाद, धुले, धूमसाई, धेनका, धोंडापुरा, धोबघट, धोरंजी, धौरहरा, ध्रांगध्रा, नंगल (रोपड़), नअगाँ (क), नई मुम्बई, नगरिया देवधरापुर, नगला खंगर, नगलामूर्ली, नङतड़ी, नटावद, नदबई, ननौरा, नयागाँव, नयीदिल्ली, नयी मुम्बई, नरंगपुर, नरवन, नरसिंहपुर, नरहा (पूर्वी), नरियालगाँव, नलवाड़, नल्लजर्ला, नवलगढ़, नवाँशहर, नवाडीह, नवादा, नवाबगंज, नसीराबाद, नांदिया, नांदेड़, नाकाचौक, नाकोट, नागपुर, नागौद, नाचनी, नाटौज, नाडोली, नानकमता, नानामांडवा, नाभा, नारकंडा, नारायणगढ़, नारायणपेठ, नारेपुर, नासिक, नाहन, नाहरगढ़, निंबाहेड़ा, निकासी हस्तिनापुर, निफाड़, निबिहा (पथवलिया), निमखेड़ बाजार, निमाज, निर्मली, निवाड़ी, नीदर, नीमकाथाना, नीमच, नेंनूपट्टी, नेगाड़ियोंका खेड़ा, नेवरा, नेवारी, नेहरूग्राम, नैनी, नोएडा, नोनरा (पंडितपुरा), नोनार (पीरो), नोहर, नौगवाँ पकड़ियाँ, नौगाँव, नौतनवाँ, नौरंगपुरा, नौहराधार, नौहाटगडी, न्याड़, पंडेर, पंडेरी, पंढ़रपुर, पंती, पंदोआ, पंधाना, पकवलिया, पखानजोरे, पगारा, पचगवाँ, पचपदरानगर, पचौड़र, पचौरी, पटना, पटनाबैकुंठपुर, पटियाला, पटियाली, पटुवा, पटेगना, पठा, पड़रा, पड़रिया, पड़ेजोरी, पतिलार, पत्ती, पत्यौरा, पथार, पदमपुर सुखरौ, पनई, पनवेल, पनसारी, पन्त्यूड़ी, पन्नाटाँड़, परतला, परभणी, परमानन्दगैतरा, परमानन्दपुर, परली-बैजनाथ, परसा, परसाई पिपरिया, परसापाली, परसोली, परासी चकला, पलवल, पलसा, पलाई (बसोहली), पलेई, पवनी, पसुपुला, पहरा, पहरुवा खमतरा, पहाड़ा, पहारी, पांडिचेरी, पांडुकेश्वर, पांडुपुरी-पड़रीकलाँ, पाँतली, पाँवटासाहिब, पाटौदी, पातल, पनदा, पानापुर, पानापुरलंगा, पानीपत, पायली, पारा, पालमपुर, पालवास (टाटनवा), पालवी, पाली, पावटा, पासोपुर, पाहड़ा पाहल, पिंपलगाँव वसवन्त, पिजड़ा, पिठौरा, पिठौरिया, पिथौरागढ़, पिपरा झाँपी, पिपराही, पिपराहाँ, पिपरौवाकलाँ, पिपला शिवनगर, पिपल्या, पिपल्याडेब, पिपल्या बुजुर्ग, पिलखना रसीदपुर, पिलखुवा, पिलपानी, पीठ, पीपरी-गहरवार, पीपलरावाँ, पीपली आचार्यान्, पुणे, पुरंदाहा, पुराना भोजपुर, पुरानी टेहरी, पुरैना, पुलगाँव, पुवायाँ पुष्कर, पूँछ, पूजारागाँव, पूर्णिया, पूरेदिरगजसिंह, पेंड्रा, पेद्दापल्ली, पैकौरी, पैगापुर, पोखरभिण्डा, पोखरी, पोटसो, पौना, प्रतापगढ़, प्रसाई बस्ती, प्रागपुरा, प्रीतमपुरी, प्रेमकापुरा, फगवाड़ा, फतेहगढ़, फतेहपुर, फरीदकोट, फरीदपुरा, फरीदाबाद, फर्रुखाबाद, फागा, फागी, फारबिसगंज, फिंगेश्वर, फिरवाँसी, फिरोजाबाद, फुलकीमंडी, फुलहर, फुलेरा, फूलपुररामा, फ्रामिंघम, बंगलौर, बंबेली, बंबोरा, बंसियारा, बक्सर, बक्षेरा, बगनोटी, बगरू, बगीचा सीमातल्ला, बगुल्या, बघुआ, बघेरा, बघौराँ, बचकोट, बछवाड़ा बछौनी, बटावदापार, बड़कागाँव, बड़खेरवा, बड़गल रौतेला, बडनेर-गंगाई, बड़पारी, बड़वानी, बड़वाही, बड़ारी, बड़ालू, बड़ी चकिया, बड़ीला, बड़ी सादड़ी, बड़ू, बड़ोदा, बड़ौत, बदनापुर, बदाँयू, बदौसा, बधाल, बनगाँव, बनवारीबसंत, बनायट, बनियागाँव, बनोरा, बमनपुरी, बमरोली, बमोरा, बम्हेरा, बयाना, बरखेड़ा, बरखेड़ा देवा, बरखेड़ा सोमा, बरड़ा रावजी, बरदन, बरदरी, बरनगाँव, बरनाहल, बरनियाँ, बरपा, बरमसिया, बरवा, बराकर, बराज, बरीका नगला, बरीपुरा,

बरींघाट, बरेली, बरोटांड, बरोरी, बरोहा (बमसन), बलईपुर, बलतड़ी, बलनाडीह, बलवाड़ा, बलांगीर, बला (मगर), बलिया, बलुआहा, बलौदा, बवानीखेड़ा, बसंत, बसंतपुर, बसई, बसदेहड़ा, बसरेही, बसान, बसानखर्क, बसोहली, बसौड़, बसौरा, बस्ती, बहड़, बहराइच, बहाँगीकलाँ, बहादुरगढ़, बहेराडाबर, बाँकी, बांगरोद, बाँदनवाड़ा, बाँदरी, बाँदू, बाँसाकलाँ, बाँसवाड़ा, बाकानेर, बागपत, बागपिपरिया, बागर, बाघाखाल, बाड़मेर, बाढ़, बाढ़बाजार, बानसी, बानाबुरू, बानेमऊ, बाबापुर, बामणोद, बामनगावाँ, बायतू, बाराकोट बैतड़ी, बारासोली, बालकरूपी, बालसी, बालाघाट, बालापुर, बालोतरा, बावड़ियाकलाँ, बासतालेश्वर, बाह्मनवाड़ा, बिक्रचियाबास, बिगहना, बिछौंदना, बिजनौर, बिजराकापा, बिटारा (नेपाल), बिडोली-कनखलु, बिनका, बिन्नाकंडीघाट, बिरनियाँ, बिरमित्रापुर, बिलसंडा, बिलांवाली, बिलांवाली (लवाड़ा), बिलाड़ा, बिलावर, बिलासपुर, बिषाड़ (खोलागाड़ा), बिशुनपुर बघनगरी, बिसवाँ, बिसून्दनी, बिहटा, बीकानेर, बीकापुर, बीचै-बाटीकांडे, बीदर, बीड, बीनागंज, बीरपुर, बीरमपुर, बीरवाँ-बाबूटोला, बीरेझर, बीसापुरकलाँ, बुर्जबाजी, बुरहानपुर, बुलन्दशहर, बूँदी, बूरमाजरा, बेगूसराय, बेट धरमपुरी, बेतिया, बेनियाँका बास, बेरलीखुर्द, बेरी, बेरीनाग, बेलरगाँव, बेलसार, बेलसोण्डा टेढ़हीपारा, बेलहरी, बेलहा, बेलही, बेलागंज, बेलाबन्दर अंकोला, बेहरन, बैंगनी, बैंस, बैका-बिष्णुपुर, बैजलपुर, बैद्यनाथधाम, बैरवार, बैरू, बोकारो-स्टील सिटी, बोटाद, बोदवड, बोधन, बोरगाँव, बोरनार, बोरसल, बोरसार, बोरागाँव, बोरीअरब, बोरीस, बोहानी, ब्यावर, ब्रह्मपुर, ब्रह्मावली, ब्रिकचियावास, भंजनगर, भंडारा, भंदेमऊ, भकुआ (बाँध), भगौरां, भटवलिया (गदिआनी), भटवलिया मथौली, भटवाड़ा, भटेड़ी, भड़ा-पिपल्या, भड़ूकों, भण्डारबन, भदई, भदवर, भनसुली, भरड़खेत, भरतपुर, भरथुआ, भरपूरा, भलस्वा ईसापुर, भलुआँ भिखारी, भलुआँ शंकरडीह, भलुहा (रामनई), भवनपुरा, भवानीपुर, भांडूप, भाऊगढ़, भागलपुर, भाटीवाड़, भानवड़, भायन्दर, भारापुर, भारौलीखुर्द, भावलपुर, भिंड, भिंडुआ, भिनावदा, भिलाई, भिलाईनगर, भिवण्डी, भिवानी, भींदासर, भीकनगाँव, भीखनपुर, भीखापाली, भीतिहा, भीरा, भीलवाड़ा, भुवनेश्वर, भुसावर, भूमियाधार, भेड़वन, भेलाखुर्द, भेषरी, भैंसड़ा, भैंसमुंडी, भैंसवाही, भैंसादरहा, भैंस्वाड़ा घंडियाल, भैरमऊ भैरूंदा, भोगपुर, भोगीपुर सेवाराम, भोजवल्ली, भोजौली, भोनगाँव, भोपाल, भ्रमरपुर, मंगतोला, मंगरूलनाथ, मंगलेश्वर, मंगलौर टाऊन, मंगुरही, मंजिरकांणा, मंझौली, मंडला, मंडलेश्वर, मंडावरा, मंडीबामोरा, मंड्रेला, मंदसौर, मंसूराबाद, मऊगंज, मऊनाथभंजन, मकराना, मकोइया, मखदुमपुर, मगरौलकलाँ, मगोर्रा, मजिर, मज्याप (मूलाकोट), मझगवाँ, मझगुवाँ (खुर्द), मझरिया, मझवलिया नं० २, मझिला, मझेवला, मझौरा, मटगाई, मटवारी चौक, मड़कियारी, मड़ावदा, मडोरी, मतवाना, मत्तेपुर, मथुरा, मदलोग, मदावास, मदैडीह, मधवाडीह, मधासिया, मधुकर छपड़ा, मधुपुर, मधुबन, मधुबनी, मधोडीह पंचवटी, मनकहरी, मनकापुर, मननथला अड़कीनी, मनसार, मनासा, मनिगाँव, मनिपाल, मनोहरपुर, मरकचो, मरकचो लालनगर, मरूकिया, मलंग, मलंगवा (नेपाल), मलकापुर, मलमला, मलिनियाँदिरा, मलेहरा निवादा, मलैगवाँ, मल्दा मसवासी (सेरायँ), मसौढी, महका, महतोडीह, महनियावास, महबदिया, महम, महमदाबाजार, महमूदाबाद, महम्मुदपुर, महरागाँव, महराजगंज, महरौनी, महादेव खोलाखेत, महाभारा (नेपाल), महाराजपुर, महारुद्र खलगाड़, महासमुन्द, महिदपुर, महिनाम, महिया, महिसौर, महीषी, महुअर, महुआरी, महुआवा, महुआशाला, महुरा, महू, महेशा, महोबा, महोली, माँगरौल, मांडल, मांडलगढ़, मांडावास, माओहिङ्ग, माखुपुर, माघरटोला, मोहरराय, माचलपुर, माचाडी, माचाडी चौक (सी), माणिकपुर, माधोपुर, माधोपुर बुजुर्ग, मानहड़, मानेडाँड़ा, (ढुङ्गेल बस्ती), मामट खेड़ा, मारकन, मालतीपुर, मालपुर, मालाड, मालेर कोटला, माल्दे सिरड़ी गरुड़, माहिलपुर, माहीपुर, मिझौना, मिनावड़ा, मिरज, मिरिया, मिश्रपुर, मिसकाँट, मीतली, मीरजापुर, मीराँपुर, मुंगेली, मुंडगोड, मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरपुर, मुढ़ीपार, मुबारकपुर (काँटी), मुम्बई, मुरहद्दी, मुरादनगर, मुरादाबाद, मुर्नदाचक चौक, मुलताई, मुलुंड, मुल्लनपुर, मुसेदपुर, मेंडर, मेंढर पून्छ, मेघौल, मेड़तारोड, मेदनीपुर, मेरठ, मेवड़ा, मेहकर, मैकूपुरवा, मैनपुरी, मोगा, मोटबुङ्ग (नेपाली), मोडासा, मोतीपुर, मोतीहारी, मोदीनगर, मोहतरा, मोहनिया, मोहम्मदपुर खाला, मोहाली, मौजपुर, मौडमण्डी, मौहारी, यमुना, यमुनानगर, यवतमाल, यादवपुर, येनखेड़ा, रंगेली, रंधाड़ा, रगजा, रजपुरा, रठेरा, रणजीतपुर, रतनगवाँ, रतनपुर, रतनपुरा, रतनमनिपुर, रतवाई, रत्नापुर, रत्ताटिब्बा, रनवारी,

रन्नौद, रमईपुर, रमना, री (शिकारपुरा), रसगन, रसूलपुर, रांगामाटी, राँची, राँवसर (खालसा), राऊ, राजनांदगाँव, राजापुर, राजुरवाडी, राटन, रातू, रादौर, राधाचरनकी मई, रानियाँ, रानीका बाग, रानीगंज, रानीटोला, रानीपुर, रानी बाछवारा, रामचौरा, रामगढ़-जबंधे, रामगढ़ शेखावाटी, रामदत्तपट्टी, रामदुर्ग, रामनगर, रामपुर, रामपुरडीह (मिश्रटोला), रामपुर-बखरा, रामपुरा, रामपुरी, रामेश्वरकंपा, रामकोट, रायगढ़, रायपुर, रायपुर कल्चुरियान, रायपुरसानी, रायबरेली, रायरंगपुर, रावतपुर-टिकौली, रावतसर, रिधोरा, रिसदा, रिसा (सरकाघाट), रीमोकबाजार, रीवा, रुइना भड़कटिया, रुई, रुचिदा, रुड़की, रूठियाई, रूदौली, रूपनारायणपुर, रेड़ी दुवराजपुर, रेवड़ापुर, रेवरी, रेवाड़ी, रेलानारायण, रेहटीग्राम, रैहन, रोकड़ी, रोसावाँ, रोह, रोहतक, रोहतास, रोहनिया (बड़वारा), रोहिड़ा, रौंतारा, लंका, लंकापाड़ा, लकूमड़ी, लक्ष्मीपुर सायत, लखनऊ, लखनपुर, लखोरिया, लखौरा, लछमिनियाँ, लटीपुरा, लधौन टुकड़ा, ललमिनियाँ, ललित-ललाम-सन्हौली, लवहरफरना, लश्कर, लहरी तिवारीडीह, लाखनपुर, लाखोरिया, लाखेरी, लाडपुरा, लाडवा, लातूर, लादूखेरा, लादूगाँव, लामाटोला, लालसिंग, लालसोट, लावन, लासलगाँव, लासूर, लिलुआ, लीमा चौहान, लीलूडीह, लुंफौ (नेपाल), लुधियाना, लुनढूड़ा, पिठौरागढ़, लुसाडीह, लुहारी, लैमाखोङ्ग, लोईसिंहा, लोपड़ा, लोहराजपुर, लोहाघाट, लोहारा, वंडविहार, वड्डा, वनविहार, वरणगाँव, वर्धा, वरुडजऊलका, वल्लभनगर, वलांडी, वसोल, वसोली, वांबल, वाडा, वानखेड, वापी, वारंगल, वाराणसी, वाराहीहाट, वास्को-डि-गामा, वाहेगाँव-देमणी, विकाराबाद, विजयानगरम्, विदिशा, विन्ध्यनगर, विष्णुगढ़, विष्णुपुर, विशाखापट्टनम, वीरगंज (नेपाल), वीरखाम, वीरभद्र, वीरूगढ़ी, (खेड़ा), वृथला, वेरावल, वेल्लैण्ड (कनाडा), वैर, शम्भु छपरा, शकरा, शनिचरा, शहडोल, शाजापुर, शामली, शाहकोट, शाहपुर (पंडितटोला), शाहजहाँपुर, शाहजहाँपुर-निनायाँ, शाहाबाद मारकंडा, शाहोपुर बरमा, शिकारपुर, शिमला, शिवपुरी, शिवाड़, शीतलापुरी, शीवगढ़, शेखपुरबुजुर्ग, शेखाघाट, शेरगढ़, शेरपुरकलाँ, शेरुणा, शेषपुर (दखिना), श्रीकाली चरनकी मई, श्रीगंगानगर, श्रीपीतमपुरी, श्रीपुरा, संगमनेर, संगर, संगरूर, संग्रामपुर, संतोलाबारी, संदहा, सकरी, सगौली, सटाणा, सुठालिया, सड़रा, सतसा, सत्यानन्द पल्ली, सदाशिवपेठ, सनवी, सपलेड़, समलेच, समोह, सम्भल, सयोट, सरखों, सरगाँव, सरथुआ, सरदम पिण्डरा, सरदारपुर, सरदारशहर, सरहरी, सराईपाली (कोटमी), सराय, सरेई-चंपुआ, सरेयाँ ओझवलिया, सरेयाँ बसंत, सरेयाँ रत्नाकर, सरेयाँ हरदीटोला, सरैयाँ-गोपाल, सलमगाँव, सलोन, सवाईमाधोपुर, ससना, सहनपुर, सहरसा, सहारनपुर, सहिजनी, सहुरिया, सहेलजा, सांडवा, सांभरलेक, सांवड, साईन महाबीर चौक, सागर, सागवाड़ा, सागोर, साढ़ूमल, सादड़ी, सादाबाद, साधासर, साबरमती, सारेयाद, सालोन-बी, सावन, सासन, साहूवाला, साहेबगंज, सिंगटौली, सिंगहा युसुफपुर, सिंगोली, सिकटा, सिकन्दराबाद, सिगोली चारभुजाकी, सिधौली, सिनगौड़ी, सिमरिया (रहली), सिमलगैर बाजार, सिरपुर कागजनगर, सिरसा, सिरसियाकलाँ, सिरहौल, सिर्रोंद, सिलाटि, सिलीगुड़ी, सिलोखर, सिवनी, सिहाल, सीकर, सीतापुर, सीतामढ़ी, सीथल, सीनखेड़ा, सीवाँ, सीहोर, सुकेत, सुगभटौली, सुगवाँ, सुजिया मोहलिया, सुनगाँव, सुनाम, सुन्हेत, सुमावली, सुरखण्डनगरी, सुरखी, सुरपुरा, सुरही, सुरिया मऊ, सुलतानपुर, सुल्तानखेड़ा, सुर्री, सुसनेर, सुसरे, सूरजपुर, सूरत, सूरतगढ़, सूरिया, सेंधवा, सेनाकलाँ, सेनापति, सेमरा (घुनवारा), सेमराबाजार, सेमरा मानापुर, सेमरी हरचन्द, सेरा बैतड़ी, सेरी, सेरौ पार्ट-३, सेलापुर, सेवरा, सैंथियाँ, सैन रमन (कलफोर्नियाँ), सैफाबाद, सोंथली, सोंपेजाँगोर्खा, सोनहटी चौराहा, सोनीपत, सोनेपुर, सोलंकियातला (पदमगढ़), सोलन, सोहागपुर, सौतानी, सौरेनीबाजार, हजारीबाग, हटनी, हटवाहा, हतीसा, हथौड़ाखेड़ा, हनुमानमोड़, हनौता पारीछत, हमीरपुर, हरखाँही-मठिया, हरगनपुर, हरदा, हरदिया, हरदी, हरदोई, हरनी, हरपुर-रेवाड़ी, हरबोंगवा, हरसौली, हरिद्वार, हरिनगर शामती, हरिपुर, हरिमाही, हरियामाली, हरिशंकरपुर, हलियापुर, हल्द्वानी, हसलपुर (बोड़खी), हसामपुर, हस्तम, हस्वा, हाजीपुर, हाटकोटी, हाडेचा, हाथरस, हापुड़, हामी (महुआडांड़), हालिशहरकोना, हावड़ा, हिंडौनसिटी, हिंदमोटर, हिगोलाकलाँ, हिमराजपुर, हिम्मतनगर, हिरनोदा, हिसार, हुमायूँपुर, हुस्सेछपरा, हूर, हैदंराबाद, होजाई, होनावर, होशंगाबाद, होशियारपुर, ५६ ए०पी०ओ०, ८४ बटा०सी०सु०बल, १० वाहिनी सी०सु०बल।

'कल्याण' के वार्षिक ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

'कल्याण' का यह नवम्बर मासका अङ्क आपकी सेवामें प्रेषित है। अगले दिसम्बर मासके अङ्कके प्रेषणके साथ ही यह वर्ष पूरा हो जायगा। आगामी वर्ष ८१ का विशेषाङ्क **'अवतार-कथाङ्क'** का प्रेषण जनवरी मासके प्रथम सप्ताहसे प्रारम्भ करनेका प्रयास है। जिन ग्राहकोंका सदस्यता-शुल्क १५ दिसम्बरतक **'कल्याण-कार्यालय', गोरखपुर** या **गीताप्रेसकी निजी दूकानों** पर जमा हो जायगा, उन्हें विशेषाङ्क रजिस्ट्रीसे प्रेषित किया जायगा। शेष सभी वार्षिक ग्राहकोंको विशेषाङ्क वी०पी०पी० से प्रेषित होगा। वी०पी०पी० से अङ्क प्रेषित करनेपर ग्राहकोंको रजिस्ट्रीसे भेजे गये अङ्ककी अपेक्षा रु० १० वी०पी०पी० खर्चके अधिक देने पड़ते हैं। अतः सदस्यता-शुल्क मनीऑर्डरद्वारा या बैंक ड्राफ्टद्वारा शीघ्र भेज देना चाहिये। रकम भेजते समय अपनी ग्राहक-संख्या एवं पूरा नाम-पता स्पष्ट लिखना चाहिये।

'कल्याण' का प्रतिनिधि बतानेवाले किसी अपरिचित व्यक्तिको 'कल्याण' का शुल्क कदापि न दें। **किसी कारणसे यदि आगामी वर्षमें ग्राहक नहीं रहना हो तो पत्रद्वारा अवश्य सूचित कर दें, जिससे वी०पी०पी०से प्रेषण रोका जा सके।**

दसवर्षीय/पंद्रहवर्षीय/पञ्चवर्षीय सदस्योंसे अनुरोध—अनेक सदस्य जिनकी सदस्यता दिसम्बर सन् २००६ ई० में पूर्ण हो रही है, उन्हें इसकी सूचना व्यक्तिगत रूपसे पत्र भेजकर दी गयी है। जिन सदस्योंने अभीतक नवीनीकरण-हेतु शुल्क नहीं भेजा है, उन्हें पञ्चवर्षीय/वार्षिक सदस्यता-शुल्क भेजनेमें शीघ्रता करनी चाहिये, जिससे 'कल्याण' नियमित प्राप्त होता रहे **(अब आजीवन/पंद्रहवर्षीय/दसवर्षीय सदस्य नहीं बनाये जाते हैं)।**

आगामी वर्षका वार्षिक शुल्क रु० १३० (सजिल्द रु० १५०), पञ्चवर्षीय शुल्क भारतमें रु० ६५० (सजिल्द रु० ७५०)

'कल्याण' के विशेषाङ्क गीताप्रेसकी निजी दूकानों/स्टेशन-स्टालपर उपलब्ध रहते हैं तथा वहाँ ग्राहक भी बनाये जाते हैं। इसकी पूरी सूचना 'कल्याण'-संख्या ९ के कवर पृष्ठ ३ पर प्रकाशित की गयी है।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

छपकर तैयार— मँगानेमें शीघ्रता करें—गीता-दैनन्दिनी [सन् २००७ ई०] (वि० सं० २०६३-६४)

गीता-दैनन्दिनी श्रीमद्भगवद्गीताके नित्य स्वाध्याय एवं मननकी प्रेरणास्रोत है। इसे पूर्वकी भाँति दो आकार/तीन प्रकार तथा उपासनायोग्य आठ बहुरंगे चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-पर्व, शुभ मुहूर्त्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग एवं दैनिक उपयोगकी पाठ्यसामग्रीके साथ प्रकाशित किया गया है।

पुस्तकाकार— **विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)**— फोमयुक्त आकर्षक जिल्द, गीता-मूल एवं हिन्दी-अनुवाद, मूल्य रु०४५ **(कोड 1489)** बँगला, **(कोड 1644)** ओड़िआ तथा **(कोड 1714)** तेलुगु भी उपलब्ध। प्रत्येकका मूल्य रु०४५

सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 503)— संस्कृत एवं रोमनमें गीताके श्लोक, मूल्य रु० ३०

पॉकेट साइज— **विशिष्ट संस्करण (कोड 506)**— पूर्वकी भाँति फोमयुक्त जिल्द एवं आवश्यक सूचनाएँ, मूल्य रु० २०

(पैकिंग एवं डाकखर्च अतिरिक्त)

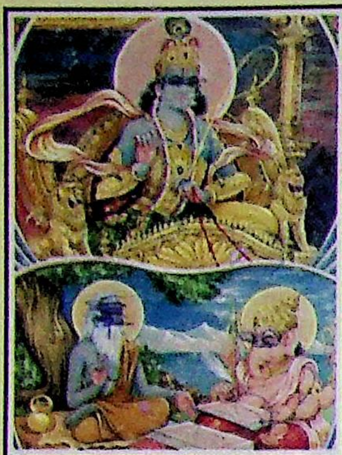
कृपया इसका दैनिक-जीवनमें उपयोग करें एवं अपने प्रतिष्ठानसे वार्षिक उपहारके रूपमें इसे वितरित करके गीता-प्रचारमें सहयोगी बनें। गीताप्रेसकी निजी पुस्तक-दूकानोंसे थोक खरीद करनेपर नियमानुसार डिस्काउन्टके साथ उपलब्ध।

खुल गयी है—कोयम्बटूरमें गीताप्रेसकी निजी पुस्तक-दूकान

पता—**Gita Press Sales Depot**

Gita Press Mansion, 8/1M, Racecourse COIMBATORE—641018 (Tamilnadu) ✆ 0422-3202521

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत-संख्या—NP/GR—13/06
प्र० ति० १-११-२००६
LICENCE NO.-WPP/GR-03/2006 | LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT



श्रीगीता-जयन्ती

योमां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः। सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥ (गीता ६। ३०-३१)

'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।'

आजके इस अत्यन्त संकीर्ण स्वार्थपूर्ण जगत्‌में दूसरेके सुख-दुःखको अपना सुख-दुःख समझनेकी शिक्षा देनेके साथ-साथ कर्तव्य-कर्मपर आरूढ़ करानेवाला और कहीं भी आसक्ति-ममता न रखकर केवल भगवत्सेवाके लिये ही यज्ञमय जीवन-यापन करनेकी सत्-शिक्षा देनेवाला सार्वभौम ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवद्गीता' ही है। इस ग्रन्थका विश्वमें जितना अधिक वास्तविक रूपमें प्रचार-प्रसार होगा, उतना ही मानव सच्चे सुख-शान्तिकी ओर बढ़ सकेगा।

मार्गशीर्ष शुक्ल ११, शुक्रवार, दिनाङ्क १ दिसम्बर २००६ ई० को श्रीगीता-जयन्तीका महापर्व-दिवस है। इस पर्वपर जनतामें गीता-प्रचारके साथ ही श्रीगीताके अध्ययन—गीताकी शिक्षाको जीवनमें उतारनेकी स्थायी योजना बननी चाहिये। आजके किंकर्तव्यविमूढ़ मोहग्रस्त मानवके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। इस पर्वके उपलक्ष्यमें श्रीगीतामाता तथा गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णका शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये नीचे लिखे कार्य यथासाध्य और यथासम्भव देशभरमें सभी छोटे-बड़े स्थानोंमें अवश्य होने चाहिये—

(१) गीता-ग्रन्थ-पूजन। (२) गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण तथा गीताको महाभारतमें ग्रथित करनेवाले भगवान् व्यासदेवका पूजन। (३) गीताका यथासाध्य व्यक्तिगत और सामूहिक पारायण। (४) गीता-तत्त्वको समझने-समझानेके हेतु गीता-प्रचारार्थ एवं समस्त विश्वको दिव्य ज्ञानचक्षु देकर सबको निष्कामभावसे कर्तव्य-परायण बनानेकी महती शिक्षाके लिये इस परम पुण्य दिवसका स्मृति-महोत्सव मनाना तथा उसके संदर्भमें सभाएँ, प्रवचन, व्याख्यान आदिका आयोजन एवं भगवन्नाम-संकीर्तन आदि करना-कराना। (५) महाविद्यालयों और विद्यालयोंमें गीता-पाठ, गीतापर व्याख्यान, गीता-परीक्षामें उत्तीर्ण छात्र-छात्राओंको पुरस्कार-वितरण आदि। (६) प्रत्येक मन्दिर, देवस्थान, धर्मस्थानमें गीता-कथा तथा अपने-अपने इष्ट भगवान्‌का विशेषरूपसे पूजन और आरती करना। (७) जहाँ किसी प्रकारकी अड़चन न हो, वहाँ श्रीगीताजीकी शोभायात्रा (जुलूस) निकालना। (८) सम्मान्य लेखक और कवि महोदयोंद्वारा गीता-सम्बन्धी लेखों और सुन्दर कविताओंके द्वारा गीता-प्रचार करने और करानेका संकल्प लेना, तदर्थ प्रेरणा देना और (९) देश, काल तथा पात्र (परिस्थिति)-के अनुसार गीता-सम्बन्धी अन्य कार्यक्रम अनुष्ठित होने चाहिये। —सम्पादक

इस अङ्कका मूल्य रु० ६ मात्र